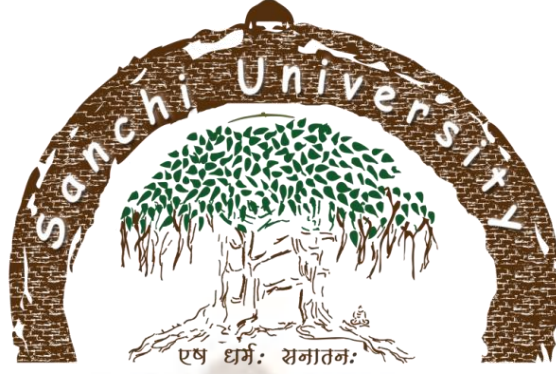


योग दर्शन के परिप्रेक्ष्य में चित्तवृत्ति निरोध का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण



एम.फिल. (योग) में उपाधि हेतु प्रस्तुत
लघु शोध-प्रबंध

शोध निर्देशक
डॉ. उपेन्द्र बाबू खत्री
सहायक प्राध्यापक

शोधार्थी
रक्षा सिंह बघेल
नामांकन क्रमांक En16-00023

योग एवं आयुर्वेद विभाग

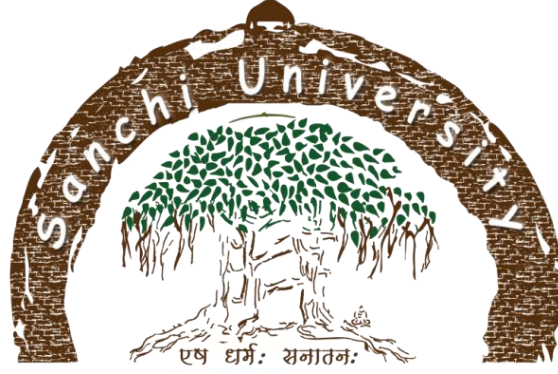
सनातन धर्म एवं भारतीय ज्ञान अध्ययन केन्द्र

साँची बौद्ध-भारतीय ज्ञान अध्ययन विश्वविद्यालय

साँची (म.प्र.) 464661

2022

योग दर्शन के परिप्रेक्ष्य में चित्तवृत्ति निरोध का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण



एम.फिल. (योग) में उपाधि हेतु प्रस्तुत
लघुशोध-प्रबंध

शोध निर्देशक
डॉ. उपेन्द्र बाबू खत्री
सहायक प्राध्यापक

शोधार्थी
रक्षा सिंह बघेल
नामांकन क्रमांक En16-00023

विभागाध्यक्ष
डॉ. उपेन्द्र बाबू खत्री
योग एवं आयुर्वेद विभाग

योग एवं आयुर्वेद विभाग

सनातन धर्म एवं भारतीय ज्ञान अध्ययन केन्द्र
साँची बौद्ध-भारतीय ज्ञान अध्ययन विश्वविद्यालय
साँची (म.प्र.) 464661

2022



शोधार्थी द्वारा घोषणा पत्र

मैं एतद् द्वारा घोषणा करती हूँ कि यह शोध-कार्य योग दर्शन के परिप्रेक्ष्य में चित्तवृत्ति निरोध का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण : डॉ. उपेन्द्र बाबू खत्री, सहायक प्राध्यापक योग एवं आयुर्वेद विभाग/सनातन धर्म एवं भारतीय ज्ञान अध्ययन केन्द्र के निर्देशन में किया गया मेरा मौलिक शोध-कार्य है जिसे विभागीय शोध समिति द्वारा अनुमोदित किया गया है।

मैं, यह भी घोषणा करती हूँ कि मेरी जानकारी के अनुसार इस लघु शोध-प्रबन्ध में किसी भी प्रकार का ऐसा तथ्य उद्धृत नहीं किया गया जो इस विश्वविद्यालय या किसी अन्य विश्वविद्यालय के समक्ष किसी भी उपाधि हेतु प्रस्तुत किया गया हो।

साथ ही मैं यह भी घोषणा करती हूँ कि—

1. मैंने विश्वविद्यालय अनुदान आयोग अधिनियम 2009 के मापदण्डों के अनुसार कोर्स वर्क सफलता पूर्वक पूर्ण किया है।
2. मैंने लघु शोध-प्रबन्ध अन्तिम रूप से जमा करने के पूर्व विभागीय शोध समिति के समक्ष प्रस्तुति दी है और दिए गए निर्देश एवं सुझाव के आधार पर संशोधन को अपने शोध-कार्य में शामिल किया है।
3. मैंने लघु शोध-प्रबन्ध से सम्बन्धित दो शोध-पत्रों का प्रकाशन ISSN/रेफर्ड जर्नल में कराया है; जिसकी छायाप्रति शोध-प्रबन्ध के अन्त में संलग्न है। मैंने लघु शोध विषय से सम्बन्धित राष्ट्रीय संगोष्ठी में शोध-पत्र भी प्रस्तुत किया है।
4. साथ ही मैं यह घोषणा करती हूँ की प्रस्तुत लघु शोध-प्रबन्ध में कोई भी कंटेंट, किसी अन्य शोध या किसी प्रकाशित सामग्री का हिस्सा नहीं है। यदि साहित्यिक चोरी के अन्तर्गत कोई भी कंटेंट पाया जाता है, तो उसके लिए मैं स्वयं उत्तरदायी रहूँगी।

स्थान

साँची, रायसेन (मध्यप्रदेश)

दिनांक.....

हस्ताक्षर

शोधार्थी

रक्षा सिंह बघेल



साहित्यिक प्रतिबद्धता/नकल का प्रमाण-पत्र

यह प्रमाणित किया जाता है कि प्रस्तुत लघु शोध-प्रबन्ध योग दर्शन के परिप्रेक्ष्य में चित्तवृत्ति निरोध का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण की साहित्यिक प्रतिबद्धता की जाँच निम्नलिखित उपकरण से की गई है—

मैं यह घोषणा करती हूँ कि—

1. लघु शोध-प्रबन्ध ज्ञान के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण कार्य है। यह लघु शोध-प्रबन्ध इस विषय में अब तक किए गए कार्य/प्रकाशित/प्रकाशित होने वाले कार्यों से भिन्न है। किसी भी प्रकार का वाक्य, चित्र, आरेख, अनुच्छेद कहीं से भी नकल नहीं है तथा जहाँ भी किसी पूर्व के कार्यों का उल्लेख शोध-प्रबन्ध में किया गया है उसे उद्धरण चिन्ह के अन्तर्गत रखा गया है।
2. यह शोधार्थी का मौलिक कार्य है (किसी भी कार्य का नकल नहीं है)। शोधार्थी द्वारा किसी अन्य के कार्यों, संकल्पना, प्रक्रिया, परिणाम को अपने शोध-कार्य में दावा नहीं किया गया है।
3. शोध-कार्य के परिणाम एवं विश्लेषण में किसी भी प्रकार की मिथ्या का सहारा नहीं लिया गया है।
4. शोध-कार्य में किसी भी अनुसंधान सामग्री, उपकरण, प्रक्रियाओं या परिणामों की अदला-बदली के माध्यम से गलत परिणाम आते हैं। शोध-कार्य में ऐसा कोई भी प्रयास नहीं है।
5. “विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (उच्चतर शिक्षा संस्थानों में अकादमिक सत्यनिश्ठा एवं साहित्यिक चोरी की रोकथाम को प्रोत्साहन) विनियम, 2018” के दिशा-निर्देश के अनुसार शोध-प्रबन्ध की जाँच **URKUND (Ouriginal)** के द्वारा की गई है।

स्थान

साँची, रायसेन (मध्यप्रदेश)

दिनांक.....

हस्ताक्षर

शोधार्थी

रक्षा सिंह बघेल



सर्वाधिकार

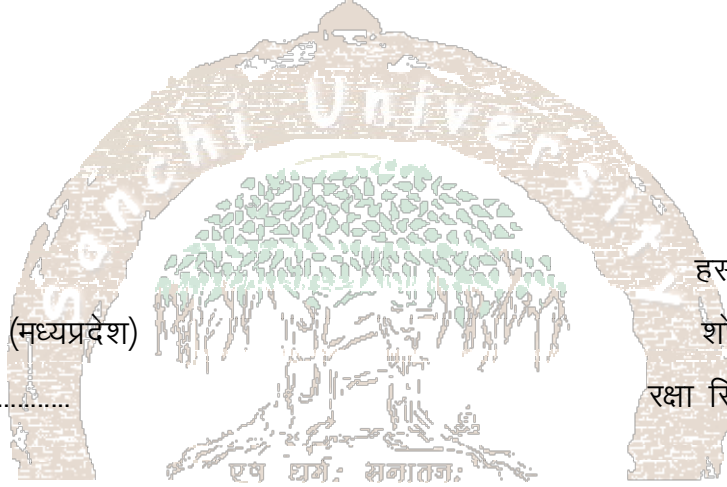
मैं **रक्षा सिंह बघेल** एतद् द्वारा घोषणा करती हूँ, कि साँची बौद्ध-भारतीय ज्ञान अध्ययन विश्वविद्यालय, साँची, रायसेन द्वारा इस लघु शोध-प्रबन्ध '**योग दर्शन के परिप्रेक्ष्य में चित्तवृत्ति निरोध का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण**' को शैक्षणिक/अनुसंधान उद्देश्य से इलेक्ट्रॉनिक या प्रिंट प्रारूप में उपयोग करने के अधिकार होंगे।

नोट-शोधार्थी अथवा अन्य द्वारा लघु शोध-प्रबन्ध के आँकड़ों/निष्कर्ष का प्रयोग व्यक्तिगत रूप से किया जा सकेगा बशर्ते कि विश्वविद्यालय के सर्वाधिकार का उल्लेख किया जाए।

स्थान

साँची, रायसेन (मध्यप्रदेश)

दिनांक.....



हस्ताक्षर

शोधार्थी

रक्षा सिंह बघेल



प्रमाण पत्र

यह प्रमाणित किया जाता है, कि शोध विषय 'योग दर्शन के परिप्रेक्ष्य में चित्तवृत्ति निरोध का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण' रक्षा सिंह बघेल द्वारा किया गया शोध-कार्य है, जिसे साँची बौद्ध-भारतीय ज्ञान अध्ययन विश्वविद्यालय में एम. फिल (योग) उपाधि के लिए मेरे निर्देशन में पूर्ण किया गया है।

मेरी जानकारी के अनुसार—

1. यह शोधार्थी का मौलिक कार्य प्रतीत होता है।
2. यह लघु शोध-कार्य विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के मापदण्डों एवं निर्देशों को पूरा करता है।
3. विश्वविद्यालय की एम. फिल (योग) उपाधि से सम्बन्धित अध्यादेश की आवश्यकताओं को पूरा करती है।

स्थान

साँची, रायसेन (मध्यप्रदेश)

दिनांक.....

हस्ताक्षर

शोधार्थी

रक्षा सिंह बघेल

हस्ताक्षर

विभागाध्यक्ष

डॉ. उपेन्द्र बाबू खत्री

(योग एवं आयुर्वेद विभाग).



आभार

सर्वप्रथम मैं परमपिता परमात्मा, ईष्ट एवं गुरु सत्ता की सूक्ष्म एवं दिव्य प्रेरक संवेदनाओं को नमन करता हूँ, जिनकी चेतना से चैतन्य होकर मैं इस लघु शोध-कार्य का वाहक बन पायी हूँ। तत्पश्चात् साँची विश्वविद्यालय परिवार के सभी सदस्यों का आभार प्रकट करती हूँ जिनके आशीर्वाद, प्रेरणा, प्रोत्साहन, सतत् स्नेह, वात्सल्य एवं प्रयास से मेरा यह शोध-कार्य सम्पन्न हुआ।

यहाँ मैं उन सभी विद्वानों के प्रति आभार प्रकट करता हूँ जिन्होंने इस विषय पर मुझे प्रेरणास्पद सहयोग प्रदान किया।

यह मेरा सौभाग्य है कि मुझे यह शोध-कार्य डॉ. उपेन्द्र बाबू खत्री, योग विभाग के निर्देशन में पूर्ण करने का अवसर प्राप्त हुआ जो स्वयं ज्ञान से परिपूर्ण एवं योग्य सहायक प्राध्यापक हैं। आपने अमूल्य समय इस शोध-कार्य में देकर मुझे पूर्ण सहयोग प्रदान किया है जिसके लिये मैं हमेशा आपका हृदय से आभारी रहूँगी।

मैं विशेष रूप से संस्थान के सभी शिक्षक गणों डॉ. शाम गणपत तिखे, डॉ. नवीन मेहता, डॉ. संतोष प्रियदर्शी, डॉ. राहुल सिद्धार्थ, डॉ. विश्वबन्धु, डॉ. प्रभाकर पाण्डे आदि के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करती हूँ जिन्होंने मुझे सम्पूर्ण शोधकार्य में ऊर्जा स्रोत के रूप में सहयोग प्रदान किया।

मैं हृदय से विशेष आभारी हूँ 'सेम कॉलेज भोपाल' के 'आयुर्वेदिक साइंस एण्ड हॉस्पिटल' विभाग में 'प्राचार्य' पद पर कार्यरत डॉ. अखिलेश कुमार सिंह का जिन्होंने अपने ज्ञान एवं मार्गदर्शन से मेरे लघु शोध-कार्य को सफल बनाने में सहयोग दिया।

मैं अपने सहयोगी सभी मित्र बन्धुओं का भी आभार व्यक्त करता हूँ, जिन्होंने मेरी आवश्यकता पड़ने पर मुझे पूर्ण सहयोग प्रदान किया। मेरे सहयोगी मित्र डॉ. हरीश कुमार, धनंजय जैन, डॉ. उमाशंकर कौशिक, डॉ. लोकेश चौधरी, रोशन भारती, भानुप्रताप सिंह बुंदेला, अखिलेश कुमार विश्वकर्मा, रंजीत सिंह, डॉ. नम्रता

चौहान, नीलू विश्वकर्मा, ममता चौधरी, प्रधी चौहान, अवधेश सिंह, गौरव त्यागी, निकिता शर्मा आदि ने पूरे शोध-कार्य की अवधि में मुझे सहयोग प्रदान किया।

विश्वविद्यालय के पुस्तकालय एवं पुस्तकालय प्रभारी डॉ. अमित ताम्रकर, हरीश असाटी, प्रकाश मण्डलोई के सहयोग के लिए मैं आभार व्यक्त करता हूँ, जिन्होंने आव यकता पड़ने पर मेरा पूर्ण सहयोग दिया।

अंत में उन सभी ग्रंथ एवं ग्रंथकारों, शोध पत्र एवं शोधार्थियों, कर्मचारियों का मैं आभारी हूँ जिनका इस लघु शोध-कार्य को संपन्न करने में प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से यत्किंचित सहयोग प्राप्त हुआ। इस लघु शोध-प्रबन्ध की पूर्णता मेरे स्वयं के प्रयास से संभव नहीं थी। अतः इस लघु शोध-प्रबन्ध के कार्य में जिन महानुभवों का मार्गदर्शन, निर्देशन एवं सहयोग प्राप्त हुआ है, उनके प्रति मैं अपना आभार प्रकट करना परम कर्तव्य एवं सौभाग्य समझती हूँ।



Document Information

Analyzed document	M.Phil Desertation Raksha singh.docx (D143380493)
Submitted	8/30/2022 7:34:00 AM
Submitted by	Prabhakar Pandey
Submitter email	coordinator.inflibnet@subis.edu.in
Similarity	0%
Analysis address	coordinator.inflibnet.subis@analysis.arkund.com

Sources included in the report

Sanchi University Of Buddhist-Indic Studies / Plagiarism Ph.D. File Akhilesh Vishwakarma .docx

SA

Document Plagiarism Ph.D. File Akhilesh Vishwakarma .docx (D116385605)



3

Submitted by: coordinator.inflibnet@subis.edu.in

Receiver: coordinator.inflibnet.subis@analysis.arkund.com

Sanchi University Of Buddhist-Indic Studies / Ph.D. thesis Dhananjay Jain.docx

SA

Document Ph.D. thesis Dhananjay Jain.docx (D135859171)



2

Submitted by: coordinator.inflibnet@subis.edu.in

Receiver: coordinator.inflibnet.subis@analysis.arkund.com

Suman -Thesis1 SKDU.docx

SA

Document Suman -Thesis1 SKDU.docx (D142236221)



2

Entire Document

विषय सूची

अध्याय	विषय	पृष्ठ क्रमांक
	प्रस्तावना	i-iv
प्रथम अध्याय	योग का सामान्य परिचय	1–36
1.1	योग का अर्थ एवं परिभाषाएँ	1
1.2	योग का ध्येय	3
1.3	योग के आयाम	5
1.3.1	कर्मयोग	5
1.3.2	ज्ञानयोग	11
1.3.3	भक्तियोग	14
1.3.4	राजयोग	17
1.3.5	मंत्रयोग	28
1.4	योग का महत्व	30
1.4.1	योग का मानव जीवन पर प्रभाव	30
1.4.2	योग का महत्व विभिन्न क्षेत्रों में	32
1.5	योग की भ्रांतियाँ	35

द्वितीय अध्याय	मनोविज्ञान की संक्षिप्त अवधारणा	37—65
2.1	मनोविज्ञान का अर्थ एवं परिभाषाएँ	37
2.2	मनोविज्ञान का इतिहास एवं विकास	38
2.3	मनोविज्ञान के विविध आयाम	43
2.4	मनोविज्ञान के दृष्टिकोण	44
2.4.1	मनोविज्ञान का पाश्चात्य दृष्टिकोण	44
2.4.2	मनोविज्ञान का भारतीय दृष्टिकोण	56
2.5	भारतीय मनोविज्ञान एवं योग	61
2.6	भारतीय मनोविज्ञान एवं पाश्चात्य मनोविज्ञान में अंतर	65
तृतीय अध्याय	चित्त एवं वृत्ति की अवधारणा	66—103
3.1	चित्त की सामान्य अवधारणा	66
3.1.1	चित्त की परिभाषा	67
3.1.2	चित्त की अवस्थाएँ	67
3.1.3	चित्त के प्रकार	68
3.1.4	चित्त की भूमियाँ	69
3.2	चित्त में उत्पन्न विघ्न	75
3.3	वृत्ति की सामान्य अवधारणा	78

3.3.1	वृत्ति का अर्थ	78
3.3.2	वृत्तियों का स्वरूप	78
3.3.3	गुणों के आधार पर वृत्तियों का विभाजन	88
3.3.4	वृत्तियों के प्रकार	91
3.3.5	क्लेशों का कारण	99
3.3.6	कर्माशय का परिणाम	100
चतुर्थ अध्याय	चित्त वृत्ति निरोध की अवधारणा	104—124
4.1	चित्त वृत्ति निरोध	104
4.2	चित्त के विक्षेप	104
4.3	चित्त वृत्ति निरोध के उपाय	106
4.3.1	अभ्यास एवं वैराग्य	106
4.3.2	ईश्वरप्रणिधान	118
4.3.3	एक तत्त्व अभ्यास	120
4.3.4	चित्तप्रसादन या चित्त की प्रसन्नता का उपाय	120
4.3.5	प्राण की अवधारणा	120
4.3.6	विषयवती प्रवृत्ति	121
4.3.7	ज्योतिष्मती प्रवृत्ति	121
4.3.8	वीतरागविषय चित्त	122
4.3.9	स्वप्न तथा निद्रा का आश्रय	122

4.3.10	यथाभिमतध्यानाद्वा	122
4.3.11	क्रियायोग	123
4.3.12	अष्टांग योग	123
4.4	चित्त वृत्ति निरोध का परिणाम	123
पंचम अध्याय	चित्त वृत्ति निरोध का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण	125—153
5.1	चित्तवृत्ति निरोध का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण	125
5.1.1	चित्तवृत्ति निरोध एवं संवेदन	127
5.1.2	चित्त वृत्ति निरोध एवं अधिगम और अभिप्रेरण	132
5.1.3	चित्तवृत्ति निरोध एवं स्मरण—विस्मरण	138
5.1.4	चित्तवृत्ति निरोध एवं चिन्तन	141
5.1.5	चित्तवृत्ति निरोध एवं बुद्धि	142
5.1.6	चित्तवृत्ति निरोध एवं व्यक्तित्व	150
5.1.7	चित्तवृत्ति निरोध एवं अवधान	151
	उपसंहार	154—155
	संदर्भ ग्रंथ सूची	156—161
	शोध पत्र एवं पत्रिकाएँ	

प्रस्तावना

- शोध अध्ययन की आवश्यकता
- शोध समस्या कथन
- शोध कार्य के उद्देश्य
- शोध प्रविधि
- साहित्यिक सर्वेक्षण
- आगामी शोध की समस्याएँ

प्रस्तावना

वर्तमान समय में व्यक्तित्व विकास की प्रक्रियायें थम सी गई हैं, जिनके कारण भोगवादी आँधी में व्यक्तित्व खण्डित हो रहा है, एवं आन्तरिक विघटन की बड़ी गंभीर स्थिति बनी हुई है। समाज में व्याप्त आतंक अराजकता एवं वातावरण में व्याप्त अशांति, महामारियाँ इसी टूटन एवं आक्रोश की बाह्य अभिव्यक्ति मात्र है। युद्धोन्माद या आतंकवाद, साम्प्रदायिक हिंसा हो अथवा महिला उत्पीड़न, आत्महत्या जैसी गंभीर समाजिक समस्यायें यह सब मानवीय व्यक्तित्व के आन्तरिक विखंडन का ही बाह्य परिणाम है।

आधुनिक युग की गंभीर समस्याओं में मनोरोगों की बाढ़ है। हम मानवीय चेतना की गंभीर समस्याओं से गुजर रहे हैं। अवसाद, तनाव, चिंता की जगह न्यूरोसिस, साइकोसिस, सिजोफ्रेनिया, जैसे शब्द आज आसानी से प्रयोग में देखे जाते हैं, कुछ सर्वेक्षणों के अनुसार अधिकांश बीमारियाँ चेतना की आन्तरिक टूटन एवं फूटन का ही परिणाम है। इस दौर में इनके समाधान हेतु, दार्शनिक, धार्मिक, वैज्ञानिक स्तर पर कुछ न कुछ प्रयास चल रहे हैं, परन्तु इनकी अपनी सीमाओं से यह ऊपर नहीं उठ पा रहे हैं। दार्शनिक प्रयास बौद्धिक जुगाली तक ही सीमित है, जिससे इनकी व्यवहारिक उपयोगिता अस्पष्ट बनी हुई है। धार्मिक प्रयासों की अपनी रूढ़िवादिता एवं हठधर्मिता, पूर्वाग्रहों एवं अवैज्ञानिकता के कारण छोटे दायरे में ही सिमट जाती है। वैज्ञानिक प्रयास जैविक हेर-फेर (जैसे जीन परिवर्तन, क्लोनिंग आदि) तक सीमित होने के कारण अभी सतहों में ही भटक रहे हैं, जबकि मानवीय व्यक्तित्व मात्र जैविक रसायनों का संगठन भर नहीं है, इसकी अपनी मनोवैज्ञानिक एवं उससे उच्चतर आध्यात्मिक सत्ता भी है।

योग के चेतना आधार (आत्मा) योग विज्ञान का परिष्कृत स्वरूप योग दर्शन महर्षि पंतजलि द्वारा उद्घाटित हुआ है।

योगसूत्र में, 'योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः', चित्त की वृत्तियों के निरोध का नाम योग है। इस वाक्य के दो अर्थ हो सकते हैं: चित्तवृत्तियों के निरोध की अवस्था का नाम योग है या इस अवस्था को लाने के उपाय को योग कहते हैं।

योग दर्शन सांख्य दर्शन के विशेष रूप में उसके सैद्धांतिक पक्ष के साथ योग दर्शन में निहित उसके व्यावहारिक पक्ष को मानता है। योग दर्शन का आधार एक विशेष रूप से वर्णित सूत्रात्मक ग्रंथ है और साथ ही यह एक मनोवैज्ञानिक सूत्रात्मक ग्रंथ है। इस सूत्रात्मक ग्रंथ में वर्णित 195 सूत्रों का वर्गीकरण किया गया है। जिसमें पहले पाद में वर्णित समाधि पाद में 51 सूत्र हैं। द्वितीय पाद में 55 सूत्र तृतीय पाद में 55 सूत्र और चतुर्थ पाद में 34 सूत्र हैं।

महर्षि पतंजलि द्वारा वर्णित यह सूत्रात्मक ग्रंथ एक मनोवैज्ञानिक ग्रंथ है जिसमें चित्त की चर्चा की गई है और साथ ही साथ चित्त के विषय को ध्यान में रखते हुए उसके पूर्ण रूप से उसमें उत्पन्न होने वाली वृत्तियों के साथ-साथ चित्त विक्षेप अन्तराय और उनके सहयोगी सहभुव अवयवों के विषय को इस योगसूत्र में बताया गया है। योग दर्शन में चित्त के इन विषयों को दूर करने के लिए उपाय के रूप में अभ्यास और वैराग्य, क्रियायोग और अष्टांग योग की चर्चा पतंजलि योग सूत्र में की गई है।

योगदर्शन के अनुसार चित्त में उत्पन्न होने वाली वृत्तियों के निरोध के लिए योग ही महत्वपूर्ण अंग और साधन हैं। इस प्रकार योग दर्शन में चित्त की शुद्धि और उसके गुणों की चर्चा की गई है। चित्त के विषयों के साथ-साथ चित्त के विभिन्न प्रकार के रूपों की चर्चा भी पतंजलि योगसूत्र में की गई है।

एष धर्मः सनातनः

शोध अध्ययन की आवश्यकता

जहाँ आधुनिक मनोविज्ञान की इति अर्थात् अवसान होता है, वहाँ से योग रूपी अध्यात्म मनोविज्ञान का आविर्भाव होता है।

आधुनिक मनोविज्ञान की तुलना में योग मनोविज्ञान का क्षेत्र अति व्यापक है। पातंजल योगदर्शन जो भारत का प्राचीन मनोविज्ञान का आधार ग्रंथ है, इस प्राचीन भारतीय दर्शन का संबंध अध्यात्म क्षेत्र से है क्योंकि इस अध्यात्म क्षेत्र की पहुँच आधुनिक मनोविज्ञान से कोसों दूर है। आधुनिक मनोविज्ञान अपनी वैज्ञानिक पद्धति द्वारा व्यक्तियों के मस्तिष्क पर अपनी औषधियों द्वारा रासायनिक संतुलन तो बना सकता है, परन्तु इससे व्यक्ति के व्यवहार व आचरण में सुधार नहीं लाया जा सकता।

जबकि योग मनोविज्ञान द्वारा यदि व्यक्ति के सम्पूर्ण विकास पर ध्यान दिया जाये, तो पातंजलि में समाहित योग की छोटी-छोटी पद्धतियों जैसे प्रणव, जप तथा प्राणायाम की पद्धति का व्यक्ति पर प्रयोग कर उसके मस्तिष्क में असंतुलित रासायनिक क्षोभ को संतुलित अवस्था में लाया जा सकता है। यौगिक पद्धति द्वारा योगी के मन व मस्तिष्क में सकारात्मक परिवर्तन कर उसके व्यक्तित्व को सही दिशा दी जा सकती है। अतः इस दिशा में कार्य किया जाना अति आवश्यक है। यह दो रूपों में हो सकती है।

(1) पुरातन काल से चली आ रही भारतीय परम्परा में प्रचलित योग पद्धति का मनोवैज्ञानिक दृष्टि से अध्ययन एवं अनुसंधान।

(2) योग में समाहित मन से संबंध रखने वाली 'मानस शास्त्र' का वर्तमान काल में मनोवैज्ञानिक उपचारात्मक शोध करना।

शोध समस्या कथन

योग दर्शन के परिप्रेक्ष्य में चित्तवृत्ति निरोध का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण।

शोध कार्य के उद्देश्य

- (1) योग दर्शन में वर्णित चित्त तथा वृत्ति के स्वरूप का अध्ययन करना।
- (2) चित्त वृत्ति के निरोध का अध्ययन करना।
- (3) योग दर्शन में वर्णित चित्तवृत्ति व उनके निरोध का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करना।

शोध अध्ययन प्रविधि

प्रस्तुत शोध प्रस्ताव की प्रमुख रूप से शोध प्रविधि विश्लेषणात्मक है। सहायक प्रविधियों के अन्तर्गत विवेचनात्मक, व्याख्यात्मक एवं विवरणात्मक विधियों का प्रयोग किया गया है।

शोध साहित्यिक सर्वेक्षण

असीम कुलश्रेष्ठ जी द्वारा प्रतिपादित “पातंजल योग सूत्र में अध्यात्म की वैज्ञानिक प्रक्रिया” 31 जुलाई 2015 में प्रकाशित हुई।

इनके अनुसार मनुष्य जीवन के अत्यन्त गूढ़ रहस्यों को तथा जीवन के सारभूत अंश को जानने के लिए आध्यात्मिक मार्ग की आवश्यकता होती है। इन आध्यात्मिक मार्ग का अनुकरण करते हुए व्यक्ति रहस्यमयी परिदृश्यों को समझता है, तब वह हर समस्या का समाधान करने में दक्ष हो जाता है। धर्मः समातनः

आगामी शोध की सम्भावनाएँ

आगामी शोध की संभावनाओं को देखते हुए, “योगदर्शन के परिप्रेक्ष्य में चित्तवृत्ति निरोध का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण” इस शोध का उपयोग भविष्य में मनोविज्ञान के विभिन्न पहलुओं पर प्रायोगिक कार्य करने के लिए किया जा सकता है।

प्रथम अध्याय

योग का सामान्य परिचय

- 1.1 योग का अर्थ एवं परिभाषाएँ
- 1.2 योग का ध्येय
- 1.3 योग के आयाम
- 1.4 योग का महत्व
- 1.5 योग की भ्रांतियाँ

1 योग का सामान्य परिचय

1.1 योग का अर्थ एवं परिभाषाएँ

योग की दार्शनिक पृष्ठभूमि विभिन्न ग्रन्थों में देखने को मिलती है। वस्तुतः इसका मूलतः श्रोत योग शब्द के युज धातु में 'धञ्' प्रत्यय लगाने से इसकी व्युत्पत्ति हुई है। यदकिंचित् "योग मुख्यतः महर्षि व्याकरणाचार्य पाणिनि जी के अनुसार तीन रूपों में इसकी अभिव्यक्ति होती है।"¹

(1) युज— समाधौ (दिवादिगणीय)

(2) युजिर— योगे (रूधादिगणीय)

(3) युज— संयमने (चुरादिगणीय)

संस्कृत के महान विद्वान पाणिनि जी के अनुसार युज धातु में 'धञ्' प्रत्यय लगाने से समाधि निष्पन्न हुआ है।

युजिर धातु में 'धञ्' प्रत्यय लगाने से सार्थक शब्द 'योग' व्युत्पन्न हुआ है। ठीक इसी प्रकार युज धातु में 'धञ्' प्रत्यय लगाने से 'संयमन' उत्पन्न हुआ है।

दिवादिगण के युज—समाधौ का अर्थ समाधि से है, जिसे मूलतः योग में समाधि नाम से संदर्भित किया गया है। रूधादिगण के युजिर योग का संदर्भित अर्थ एकत्व, जुड़ना, एकाकार है।

चुरादिगण के युज संयमने का स्वीकृत अर्थ मन के संयम से है।

¹ डॉ० श्रीवास्तव, सुरेशचन्द्र. (2018). *पातंजलयोगदर्शनम्* संस्करण. वाराणसी : चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, पृ. 30.

योग की परिभाषाएँ

“योगस्थः कुरु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा धनञ्जय ।

सिद्धयसिद्धयोः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते ॥”²

है पार्थ! तू राग, द्वेष आदि से रहित कर्मों का परित्याग करके सफलता तथा विफलता में बुद्धि को सम स्थिति में समाहित कर, योग के पथ में आरुढ़ होकर अपने कर्तव्यों को पूर्ण करो। इस प्रकार का समत्व ही योग कहलाता है।

“बुद्धियुक्तो जहातीह उभे सुकृतदुष्कृते ।

तस्माद्योगाय युज्यस्व योगः कर्मसु कौशलम् ॥”³

स्थिर बुद्धि वाला व्यक्ति सुकृत और दुष्कृत अर्थात् (अच्छे कर्मों एवं बुरे कर्मों का) इसी संसार में परित्याग कर देता है और समाहित अर्थात् स्थिर बुद्धि वाला व्यक्ति कर्म की कुशलता में पूर्ण रूप से लग जाता है।

“तं विद्याद् दुःखसंयोगवियोगं योगसंज्ञितम् ।

स निश्चयेन योक्तव्यो योगोऽनिर्विण्णचेतसा ॥”⁴

जो दुःख संसार के वियोग से पूर्णतः रहित है, उसी को योग जानना चाहिए। ऐसा योग धैर्य एवं स्थिर बुद्धि से युक्त निश्चय पूर्वक करना ही तुम्हारा कर्तव्य है।

एष धर्मः श्रुतातमः
“योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः ॥”⁵

चित्त की वृत्तियों पर पूर्णतः नियन्त्रण ही योग है।

² गीता- 2/48

³ गीता- 2/50

⁴ गीता- 6/23

⁵ पातंजल योगसूत्र- 1/2

1.2 योग का ध्येय

आत्मत्व का परमात्म तत्त्व से एकत्व ही योग का ध्येय और वास्तविक स्वरूप है। यद्यपि आज का मनुष्य अपने स्वरूप से एकाकार होने के बजाय बाह्य सुख-सुविधाओं में अपने आनन्द की खोज कर रहा है, जो कि यथार्थ नहीं है।

वह अपने आनन्द की पूर्ति के लिए भगवान से प्रार्थना करता है किन्तु यह आनन्द, भौतिक सुख-सुविधाओं से जुड़ा हुआ है, जो कि प्रार्थना नहीं है। व्यक्ति के भौतिक धरातल के सुख-सुविधाओं की प्रार्थना परार्थ न होकर स्वार्थानुकूल है। इसलिए ईश्वर भौतिक संसर्ग से जुड़ी इच्छाओं से रूष्ट है।

जिस तरह कमल कीचड़ में खिलने के बाद भी अपनी मलिनता से नहीं पहचाना जाता, बल्कि अपने दिव्य स्वरूप की आकृति जो कि उसके निर्मलता का प्रतीक है, ईश्वर के चरणों में अर्पण किया जाता है। ठीक इसी प्रकार योगी व्यक्ति योग की अग्नि से तप्त होकर अपने अन्दर के सुन्दर पवित्र विचारों के कारण ईश्वर को प्रिय है।

परन्तु आज का व्यक्ति अपनी भौतिक सुख-सुविधाओं और पशुवत् विचारों से ऊपर उठना ही नहीं चाहता, जो कि उसके दुःखों का एक मात्र कारण है और इन दुःख के कारणों से उत्पन्न परिणाम जो कि उसके अनुकूल है ही नहीं उन्हें सच समझकर वह ईश्वर को ही अपने दुःख का कारण समझने लगता है। जो यथार्थ कि दृष्टि से वास्तविक है ही नहीं। यह दुःख उसके अनंत इच्छाओं और स्वार्थ का परिणाम है। जिसके फलस्वरूप वह वास्तविक सुखों से काफी दूर है। जिस तरह जल की एक बूंद सागर में मिलकर अपने आकार स्वरूप में परिणित हो जाती है।

दूध में पानी की एक बून्द का संगम होने से दूध अपने गुण को नहीं खोता, ठीक उसी प्रकार प्रदूषित पानी का गन्धवती जल, गंगा के जल से मिलकर गंगा के गुण रूप को धारण कर पवित्र हो जाता है।

ठीक वैसे ही योगी व्यक्ति, अपने ज्ञान व योगमय आचरण से पूरे संसार को प्रफुल्लित कर देता है, और यही आचरण उसके अन्तः की अद्भुत यात्रा बन जाती है, जो कि इस चराचर जगत् में विद्यमान सुख से कहीं अधिक अलौकिक है।

मनुष्य की इच्छाओं का जब पूर्णतः अवसान होता है, तभी योग का मार्ग योगी के लिए प्रशस्त होता है। योग भौतिक धरातल से संबंधित बाह्य जगत् की यात्रा से आरंभ नहीं होता, योग की यात्रा बाह्य जगत् से शुरू न होकर अंतः जगत् से शुरू होती है। साधक के अन्दर देव शक्तियों का प्रवाह, उसके अन्दर मल रूपी कुविचारों को छोड़ने के बाद ही उत्पन्न होता है। जो व्यक्ति को सामान्य मनुष्य से योगी बनाता है। साधक के अन्दर जन्मी सकारात्मक अनुभूतियाँ उसके अन्दर ईश्वर के निर्गुण, निराकार स्वरूप का द्योतक है।

पारस के समीप आने वाले सभी पदार्थ पारस के गुण को अपनाकर सोना बन जाते हैं, ठीक उसी प्रकार योगी पुरुष के सम्पर्क में आने वाला प्रत्येक व्यक्ति तथा पशु अपने अवगुणों एवं हिंसात्मक प्रवृत्ति को छोड़कर योगी पुरुष के गुणों को अपना लेते हैं।

ज्ञान अकेले अपने आप में पूर्ण नहीं है, ज्ञान के साथ योग का होना भी आवश्यक है। तभी साधक को अपनी सम्पूर्णता का ज्ञान होता है।

उदाहरणार्थः— $2 + 2 = 4$ होता है, परन्तु यदि उसे समन्वय रूप की दृष्टि से एकरूपता में देखें तो वह 22 होता है। इसी प्रकार आत्मा तथा परमात्मा की एकरूपता ही योग की श्रेणी में आती है। जो मनुष्य के भीतर विद्यमान है। यद्यपि मनुष्य अपने अन्दर व्याप्त अनन्त संस्कारों से मुक्त होना चाहता है, परन्तु यह इतना आसान नहीं है। व्यक्ति अपने अन्दर के विकारों से मुक्त होने का उपाय ढूँढता है, तथा अपने अन्दर व्याप्त विकारों से लड़ता है, जिससे व्यक्ति के भीतर उपस्थित विकारों का घर एक लम्बी इमारत का रूप ले लेती है। अतः व्यक्ति को इन विकारों से मुक्ति के लिए चित्त की शुद्धियों के उपायों को अपनाना चाहिए। जिससे मनुष्य का आन्तरिक स्वरूप शुद्ध एवं स्फटिक मणि के समान हो जाता है। द्रष्टा के अपने स्वस्वरूप में अवस्थित होने से पहले उसे अपने अन्दर व्याप्त नकारात्मकता को कम करके सकारात्मक गुणों का उदय करना चाहिए।

नकारात्मक रूपी अवगुणों को दूर करने के लिए मनुष्य को निरन्तर अभ्यास रूपी मार्ग का सहारा लेना चाहिए। वैज्ञानिक दृष्टिकोण से मनुष्य के विकारों का कारण उसकी आदतें हैं, तथा इन आदतों को बदलने के लिए मनुष्य के अन्दर व्याप्त विकारों को धीरे धीरे जड़ से हटाना पड़ता है। जो अभ्यास से ही सम्भव है।

1.3 योग के आयाम

योग के आयामों को निम्न प्रकार से विभाजित किया गया है—

कर्मयोग

ज्ञानयोग

भक्तियोग

राजयोग

मन्त्रयोग

1.3.1 कर्मयोग

कर्मयोग का अर्थ

“कर्म शब्द “कृ” धातु से निष्पन्न है तथा उस धातु में “मन” प्रत्यय लगाने पर कर्म शब्द की व्युत्पत्ति हुई है।”⁶

मनुष्य अपने दैनिक जीवन में जो कार्य करता है, वही उसके कर्म है तथा इन्हीं कर्मों का फल मनुष्य को प्राप्त होता है। मनुष्य बिना कर्म किये, रह ही नहीं सकता।

⁶ शर्मा, ममता. डॉ० बोरा, मंजु. (2019). योग साधना का आधार “कर्मयोग”, 16 (6), पृ. 1077.

कर्मयोग की परिभाषा

“योगः कर्मसु कौशलम् ।।”⁷

कर्मों में निपुणता ही योग है, इसमें मनुष्य बिना किसी सांसारिक बन्धन में बंधे कर्म करता है, जो कि कामनाओं से रहित है। इसे ही निष्काम कर्म की संज्ञा दी गई है।

“समत्वं योग उच्यते ।।”⁸

कर्म की क्रिया होने के बाद उसमें चाहे सफलता मिले या असफलता। ऐसी स्थिति में समत्व का बने रहना ही योग है।

मनुष्य जैसे कर्म करता है, उसे उन्हीं कर्मों के अनुसार इस कर्म योनि में जन्म लेना पड़ता है। साधारणतः कर्म को तीन कोटियों में बाँटा गया है।

(अ) सुकृत कर्म

(ब) दुष्कृत कर्म

(स) निष्काम कर्म

(अ) सुकृत कर्म

सुकृत कर्म पुण्य कर्मों को कहा जाता है। मनुष्य यदि अच्छे कर्म करता है, तो उसे उस कर्मरूपी बीज के अनुसार अच्छे कर्म का फल तथा स्वर्गादि लोक की प्राप्ति होती है, और उन्हीं कर्मों के अनुसार श्रेष्ठ शरीर धारण करता है।

(ब) दुष्कृत कर्म

दुष्कृत कर्म पाप रूपी कर्मों को कहा जाता है, और इन्हीं पाप रूपी कर्मों के अनुसार मनुष्य को फल मिलता है, तथा नरकादि लोकों को प्राप्त होता है, और इन्हीं दुष्कृत कर्मों के अनुसार पशु आदि योनियों में जन्म लेता है।

⁷ गीता— 2/50

⁸ गीता— 2/48

(स) निष्काम कर्म

मनुष्य जब सुकृत तथा दुष्कृत कर्मों को छोड़कर बिना किसी कामना के कर्म करता है, तब वह जीवात्मा परमात्मा में समायोजित हो जाता है और मोक्ष को प्राप्त करता है।

कर्मयोग का प्रयोजन

कर्मयोग का प्रयोजन है, कि व्यक्ति का बिना किसी कामना के कर्म करते हुए चित्त को शुद्ध विकार रहित करना।

कर्म का वर्गीकरण

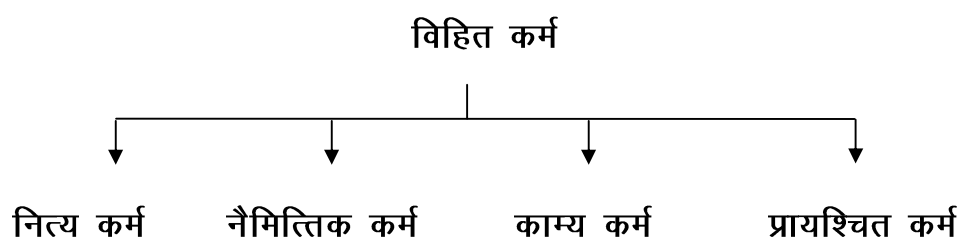
“कर्म को दो प्रकारों में वर्गीकृत किया गया है।”⁹

(अ) विहित कर्म

(ब) निषिद्ध कर्म

(अ) विहित कर्म

विहित कर्म अर्थात् पुण्य कर्म। “विहित कर्म के चार भेद हैं।”¹⁰



⁹ शर्मा, ममता, डॉ० बोरा, मंजु. (2019). योग साधना का आधार “कर्मयोग”, 16 (6), पृ. 1078.

¹⁰ शर्मा, ममता, डॉ० बोरा, मंजु. (2019). योग साधना का आधार “कर्मयोग”, 16 (6), पृ. 1078.

नित्य कर्म

दिन, प्रतिदिन जो नियमित रूप से कर्म किये जाते हैं, उसे नित्य कर्म कहते हैं।

उदाहरणार्थ— स्नानादि, शौच, पूजा—पाठ आदि।

नैमित्तिक कर्म

ऐसे कर्म जो किसी उद्देश्य की प्राप्ति के लिए किये जाते हैं, नैमित्तिक कर्म कहलाते हैं।

उदाहरणार्थ— कोई विशिष्ट पर्व के अनुष्ठान के लिए, पुत्र के जन्म होने पर जातकर्म आदि।

काम्य कर्म

ऐसे कर्म जो किसी कामना के उद्देश्य के लिए किए जाते हैं, इस प्रकार के कर्म काम्य कर्म कहलाते हैं।

उदाहरणार्थ— स्वर्ग इत्यादि के लिए, पुत्र प्राप्ति के लिए।

प्रायश्चित्त कर्म

किसी व्यक्ति के द्वारा किये गये अनैतिक कर्म जिनका प्रायश्चित्त किया जाता है, प्रायश्चित्त कर्म की श्रेणी में आते हैं।

उदाहरणार्थ— व्रत, उपवास, मौन आदि।

(ब) निषिद्ध कर्म

जिन कर्मों का शास्त्रों में पूर्णतया निषेध है, ये दुष्कृत कर्म के अंतर्गत आते हैं, निषिद्ध कर्म कहलाते हैं।

वेदांत के आधार पर कर्मों का स्वरूप

(अ) संचित कर्म

(ब) क्रियामाण कर्म

(स) प्रारब्ध कर्म

(अ) संचित कर्म

ऐसे कर्म जिनका संबंध व्यक्ति के पिछले जन्म से होता है, और ये कर्मरूपी संस्कार हमारे चित्त में संचित रहते हैं। इन्हें ही संचित कर्म कहा जाता है।

(ब) क्रियामाण कर्म

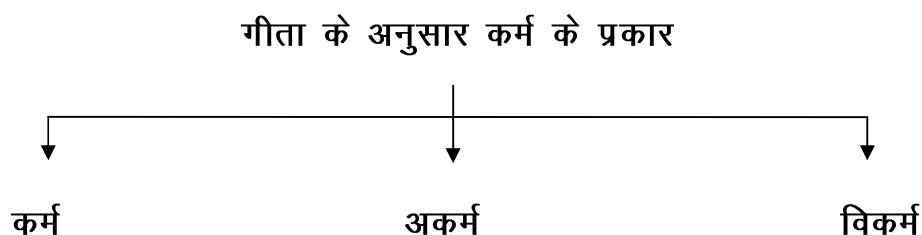
ऐसे कर्म जो भविष्य-कालिक होते हैं, और जिनका संबंध वर्तमान काल से होता है। क्रियामाण कर्म को वर्तमान कालिक कर्म भी कहते हैं।

(स) प्रारब्ध कर्म

प्रारब्ध कर्म संचित कर्म से अत्यधिक बलशाली होते हैं, और इस जन्म में सुख तथा दुःख के सहभागी होते हैं, प्रारब्ध कर्म कहलाते हैं।

गीता के अनुसार कर्म के प्रकार

“गीता के अनुसार कर्म तीन प्रकार के होते हैं।”¹¹



¹¹ शर्मा, ममता, डॉ० बोरा, मंजु. (2019). *योग साधना का आधार "कर्मयोग"*, 16 (6), पृ. 1078.

कर्म

शास्त्रों तथा वेदों में निहित कर्म को कर्मानुसार करना कर्म कहलाता है।

अकर्म

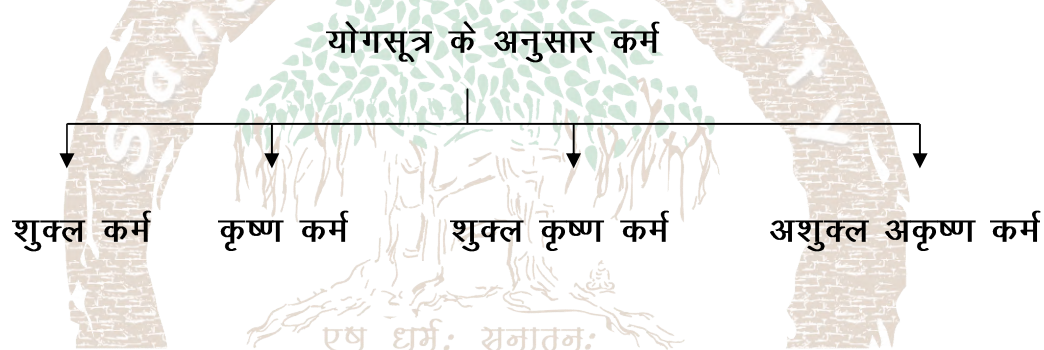
ऐसे कृतकारित कर्म, जो बिना किसी उद्देश्य के किये जाते हैं, अकर्म की श्रेणी में आते हैं।

विकर्म

ऐसे कर्म जो पाप से विद्ध हैं, विकर्म कर्म कहलाते हैं।

योगसूत्र के अनुरूप कर्म के प्रकार

“योगसूत्र के अनुसार कर्म चार प्रकार के होते हैं।”¹²



शुक्ल कर्म

ऐसे कर्म जो वेदों में निहित हैं तथा जिनसे हर्ष या प्रसन्नता की प्राप्ति होती है। शुक्ल कर्म कहलाते हैं।

कृष्ण कर्म

जो कर्म पाप से युक्त होते हैं, कृष्ण कर्म कहलाते हैं।

¹² शर्मा, ममता. डॉ० बोरा, मंजु. (2019). योग साधना का आधार “कर्मयोग”, 16 (6), पृ. 1078.

शुक्ल कृष्ण कर्म

ऐसे कर्म जो पाप तथा पुण्य से मिश्रित होते हैं, शुक्ल कृष्ण कर्म कहलाते हैं।

अशुक्ल अकृष्ण कर्म

जो मोक्ष की प्राप्ति में सहायक होते हैं, वे अशुक्ल अकृष्ण कर्म कहलाते हैं।

1.3.2 ज्ञानयोग

“ज्ञान, ज्ञान का अर्थ है, स्वयं को जानना।”¹³

ब्रह्म रूपी लक्ष्य को पाने के लिए जिन-जिन साधनों का उपयोग किया जाता है, उसे ज्ञान योग कहते हैं।

चेतना अथवा आत्मज्ञान की प्राप्ति हेतु आधारभूत तत्वों का अध्ययन करना तथा उन तत्वों सहित आत्मा का साक्षात्कार करना ही ज्ञानयोग कहलाता है।

श्रीमद्भगवद्गीता में ज्ञानयोग को सांख्य नाम से कहा है। जिसका अर्थ होता है सम्यक् ख्यान अर्थात् अच्छी प्रकार से प्राप्त ज्ञान। जिसे यथार्थज्ञान भी कहते हैं। वास्तव में ज्ञान योग के द्वारा ही आत्मा (ब्रह्म) का साक्षात्कार होता है। ज्ञानयोग की साधना के दो प्रकार हैं।

(अ) बहिरंग साधन

विवेक

वैराग्य

षट् सम्पत्ति

¹³ <https://hi.quora.com/%E0%A4%9C%E0%A5%8D%E0%A4%9E%E0%A4%BE%E0%A4%A8-%E0%A4%AF%E0%A5%8B%E0%A4%97-%E0%A4%95%E0%A5%8D%E0%A4%AF%E0%A4%BE-%E0%A4%B9%E0%A5%88-%E0%A4%9C%E0%A5%8D%E0%A4%9E%E0%A4%BE%E0%A4%A8-%E0%A4%AF%E0%A5%8B%E0%A4%97>

मुमुक्षुत्व

(ब) अंतरंग साधन

श्रवण

मनन

निदिध्यासन

(अ) बहिरंग साधन

ज्ञान योग की पहली अवस्था में जिन-जिन नियमों का पालन करना होता है। उसे बहिरंग साधन कहते हैं।

“आदौ नित्यानित्यवस्तुविवेकः परिगण्यते ।
इहामुत्रफलभोगविरागस्तदनन्तरम् ।
शमादिषट्कसम्पत्तिर्मुमुक्षुत्वमिति स्फुटम् ॥”¹⁴

विवेक

यथार्थ वस्तु को यथार्थ तथा अयथार्थ वस्तु को अयथार्थ मानना ही विवेक है। या दूसरे शब्दों में सत्य को सत्य तथा असत्य को असत्य स्वीकार करना ही विवेक है।

वैराग्य

इस समस्त संसार में भोग, सुख, ऐश्वर्य तथा परलोक में स्वर्गादि की प्राप्ति के लिए, जो इच्छा या कामनाएँ की जाती हैं, उन सब से विमुखता ही वैराग्य की श्रेणी में आता है।

षट्सम्पत्ति

षट्सम्पत्ति के 6 प्रकार हैं।

¹⁴ विवेक-चूडामणि- 19

शम

इंद्रियों को बहिर्मुखी से अन्तर्मुखी बनाकर, ब्रह्म में एकाकार कर देना ही शम है।

दम

इंद्रियों के विषय को दमन अर्थात् नियंत्रित करके पूर्णतः अपने नियंत्रण में लाना ही दम है।

उपरति

संसार के सभी पदार्थों से विरक्ति ही उपरति है।

तितिक्षा

समस्त प्रकार के कष्टों को सहन करते हुए ब्रह्म की प्राप्ति में निरन्तर प्रयास करते रहना ही तितिक्षा है।

श्रद्धा

उपदिष्ट गुरु वाक्यों तथा शास्त्रों के वाक्यों में विश्वास करना ही श्रद्धा है।

समाधान

लक्ष्य प्राप्ति के मार्ग में भटकाने वाले साधनों का न होना ही समाधान है।

मुमुक्षुत्व

अज्ञानादि बंधन से मुक्त होने की प्रक्रिया मुमुक्षुत्व कहलाती है।

(ब) अंतरंग साधन

“अंतरंग साधन के अंतर्गत तीन पक्ष निहित हैं।”¹⁵

श्रवण

¹⁵ <https://www.yaasyc.in/2021/01/Gyan-Yog-in-Hindi.html>

मनन

निदिध्यासन

श्रवण

ब्रह्मादि उपर्युक्त निर्दिष्ट वाक्यों को गुरु मुख से सुनना तथा उन वाक्यों से उत्पन्न संशय की निवृत्ति हेतु गुरु वचन सुनना ही श्रवण है।

मनन

इन उपदिष्ट गुरु वचनों का चिन्तन करना ही मनन है।

निदिध्यासन

इन सांसारिक पदार्थों से विरक्ति तथा ब्रह्म में चिन्तन करना ही निदिध्यासन है।

1.3.3 भक्तियोग

“अपने वास्तविक स्वरूप का अनुसंधान करना ही ‘भक्ति’ कहलाता है।”¹⁶

भक्ति के दो प्रकार का वर्णन निम्न है।

(अ) अपरा भक्ति

(ब) परा भक्ति

(अ) अपरा भक्ति

अपरा भक्ति को गौणी भक्ति के नाम से भी जाना जाता है। “ये मुख्यतः दो प्रकार की होती है।”¹⁷

नवधा भक्ति (वैधी भक्ति)

¹⁶ मुनिलाल. सं. (2073). *विवेक-चूडामणि*. गोरखपुर : गीताप्रेस. पृ. 13.

¹⁷ <https://www.vedamrita.com/yoga-notes/>

रागात्मिका भक्ति

नवधा भक्ति या वैधी भक्ति

“विधि से साधन होने वाली भक्ति को वैधी भक्ति कहते हैं, ये 9 प्रकार की होती हैं।”¹⁸

1. श्रवण
2. कीर्तन
3. स्मरण
4. पादसेवन
5. अर्चन
6. वंदन
7. दास्य
8. साख्य
9. आत्मनिवेद.

1. **श्रवण**— मन को एकाग्र करते हुए, ईश्वर से संबंधित दिव्य वचनों को सुनना ही श्रवण है।
2. **कीर्तन**— ईश्वर के लीला रूपी गुणों को गायन के माध्यम से सुनना ही कीर्तन है।
3. **स्मरण**— भगवान के उपदिष्ट मार्गों को यथावत चिन्तन करते रहना ही स्मरण है।
4. **पादसेवन**— ईश्वर के दिव्य चरण कमलों की नित्य सेवा करना ही पादसेवन है।
5. **अर्चना**— भगवान की वेद शास्त्रों के अनुसार विधि पूर्वक पूजा करना ही अर्चना के अन्तर्गत आता है।
6. **वंदना**— शास्त्रों में निहित मंत्र आदि उच्चारण के द्वारा पूजा या भक्ति करना ही वंदना है।
7. **दास्य भक्ति**— भगवान की भक्ति करते हुए खुद को भगवान का सेवक मानना ही दास्य भक्ति है।

¹⁸ योगांक. सं.(2073), गोरखपुर : गीताप्रेस. तेरहवें पुनमुद्रण कल्याण. पृ. 383.

8. साख्य भक्ति— ईश्वर के प्रति मित्र की तरह भाव रखना ही साख्य भक्ति है।

9. आत्मनिवेदन— अपने आप को ईश्वर के प्रति समर्पित करना ही आत्मनिवेदन है।

रागात्मिका भक्ति

रागात्मिका भक्ति, नवधा भक्ति की उत्कृष्ट अवस्था है। जिसमें पूर्णतया आनन्द की अनुभूति होती है, इसे रागात्मिका-भक्ति कहते हैं।

(ब) परा भक्ति या अहैतुकी भक्ति

परा भक्ति से तात्पर्य उपासक एवं उपास्य के एकीकृत भाव से है।

गीता में भक्त के प्रकार

“चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन।

आर्तो जिज्ञासुर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ॥”¹⁹

गीता के अनुसार भक्त के चार प्रकार निम्न हैं।

आर्त

जिज्ञासु

अर्थार्थी

ज्ञानी

आर्त

ऐसे भक्त जो सिर्फ संकट के समय परमात्मा को पुकारते हैं, आर्त भक्त कहलाते हैं।

जिज्ञासु

परमात्मा के विशुद्ध रूप को जानने की इच्छा ही जिज्ञासु भक्त के अन्तर्गत आती है।

¹⁹ गीता— 7/16

अर्थार्थी

ऐसे भक्त जो इहलोक के सांसारिक भोग व ऐश्वर्य को पाने के लिए ईश्वर की उपासना करते हैं, अर्थार्थी भक्त कहलाते हैं।

ज्ञानी

ऐसे भक्त जो आत्मस्वरूप के कल्याण के लिए ईश्वर की साधना करते हैं, ज्ञानी भक्त कहलाते हैं।

1.3.4 राजयोग

अष्टांग योग को ही राजयोग कहते हैं। जिसका उद्देश्य मोक्ष की प्राप्ति है।

“यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहार
— धारणाध्यानसमाधयोऽष्टावङ्गानि ।।”²⁰

योग के आठ अंगों का पालन करने से चित्त के सभी विकार स्वतः ही दूर हो जाते हैं एवं इस प्रकार का व्यक्ति प्रकृति और पुरुष के भेद को समझने लगता है। चित्त के सभी विकार दर्पण में जमे मलीन आवरण की तरह होते हैं। जब तक इस मलीनता को साफ न किया जाये, तब तक चित्त रूपी मलीनता का आवरण निर्मल नहीं होता, और उस मलीनता के कारण आत्मा का प्रत्यक्षीकरण संभव नहीं है। चित्त के इस मलीन रूपी आवरण को साफ करने के लिए योग के अंगों का पालन अनिवार्य है। ये आठ अंग निम्नानुसार हैं।

यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान समाधि। इनका क्रमिक रूप से पालन करने से चित्त में व्याप्त रजस एवं तमस रूपी मलीनता दूर होकर, चित्त सदा-सदा के लिए निर्मल हो जाता है।

यम से बाह्य आचरण की शुद्धि होती है, नियम से अन्तः आचरण की शुद्धि होती है। आसन से कायेन्द्रिय की शुद्धि, प्राणायाम से प्राणों की निर्मलता, प्रत्याहार से इंद्रियों की

²⁰ पातंजल योगसूत्र- 2/29

निर्मलता, धारणा से मन के विकारों का शमन, ध्यान से व्यक्ति में निर्मलता, समाधि से आत्मा से परमात्म का एकत्व।

योग के आठ अंगों का नियमानुसार पालन करने से बाह्य आचरण में सुधार आता है। आचरण से मन पवित्र एवं निर्मल होता है। जिसके परिणामस्वरूप चित्त में अच्छे विचारों का पुनर्स्थापन सम्भव है।

1. यम

यम पाँच प्रकार के होते हैं।

(अ) अहिंसा

अहिंसा का शास्त्रों में उल्लेख है, कि किसी प्राणी को कर्म, वचन, मन एवं शरीर से कष्ट न पहुँचाना अहिंसा है। हिंसा का तात्पर्य किसी को दुःख पहुँचाना, मारना, पीटना एवं शारीरिक कष्ट से है।

“अ” का अर्थ है हिंसा से रहित। यद्यपि वास्तव में हम जाने-अनजाने किसी-न-किसी को कष्ट अवश्य पहुँचाते हैं, पर वो अहिंसा की श्रेणी में आता है।

उदाहरणार्थ— सुबह उठकर दांतों में जब ब्रश करते हैं, तो मुख में व्याप्त सभी विकारों का विनाश होता है, जो कि हिंसा की श्रेणी में आता है। परन्तु मल रूपी विकारों की स्वयं से रक्षा करना ये अहिंसा के अंतर्गत आएगा, क्योंकि इससे उत्पन्न होने वाले एक नये विकार के जन्म को हम यहां पर स्वतः अवरुद्ध कर रहे हैं।

जब दूध का तत्त्वतः परिवर्तन दही में होता है, और जब हम उस दही का परिग्रहण करते हैं, तो उस दही में पाए जाने वाले जीवाणुओं के साथ हिंसा ही हो रही है, ऐसे में स्थूल हिंसा को रोकना सम्भव नहीं है। इस तरह हम हिंसा रूपी विकारों से चारों तरफ से कहीं-न-कहीं घिरे हुए हैं। इसका सबसे अच्छा दृष्टान्त कृष्ण और अर्जुन के बीच संवाद रूप में देखने को मिलता है।

जब अर्जुन अपने सगे संबंधियों को मारने रूपी हिंसक विचारों के बारे में सोचता है, तब वह भगवान श्री कृष्ण से कहता है। मुझे ऐसे सम्मान व साम्राज्य की आवश्यकता नहीं है, जो मुझे अपने सगे-संबंधियों की हत्या कर प्राप्त हो। इस तरह तो मैं पाप का भागी बन जाऊंगा।

तब भगवान श्री कृष्ण अर्जुन को अहिंसा का अर्थ समझाते हुए कहते हैं, कि एक पाप का नाश कर, धर्म की स्थापना करना ही अहिंसा है। दूसरों का अहित करना, निर्दोष को बिना अपराध के दण्ड देना, किसी की सम्पत्ति पर अधिकार जताना, स्त्रियों से दुराचार करना, यह एक प्रकार की हिंसा ही है। इन सब पापों का नाश कर, धर्म रूपी साम्राज्य की पुनः स्थापना करना अहिंसा है। किसी की भलाई के लिए अथवा उसमें सुधार लाने के लिए किसी को कष्ट पहुंचाना वैसे तो ये हिंसा प्रतीत होता है, पर सही मायनों में ये अहिंसा का प्रतीक है।

अहिंसा का आचरण करने वाले व्यक्ति के मन से बैर नामक द्वेष का परित्याग हो जाता है। मन से सभी द्वेष रूपी विकारों को दूर करना यही अहिंसा का फल है। किसी के कल्याण के लिए उसको सुधारना नितांत आवश्यक है, तो इसे अहिंसा के दायरे में रहकर भी कार्य किया जा सकता है।

अहिंसक व्यक्ति को सभी प्रकार के दुर्गुणों जैसे— राग, द्वेष, हिंसा, क्रोध करना इन सभी चीजों का त्याग करना चाहिए, और इस प्रकार के कल्याणकारी सुपथिक व्यक्ति को दूसरों की सहायता के लिए सर्वदा तत्पर रहना चाहिए।

(ब) सत्य

प्रत्यक्ष रूप से जैसा देखा व सुना जाता है, उसे वैसे ही कह देना ही सत्य है। परन्तु वास्तविक रूप में यह यथार्थ सत्य नहीं है। ऐसा सत्य जो किसी को कष्ट या पीड़ा देने वाला हो ऐसा यथार्थ वचन सत्य की श्रेणी में नहीं आता। ऐसा सत्य जो किसी की भलाई के लिए बोला जाए, उसे सही मार्ग पर लाने के लिए कहा जाए। सत्य की ऐसी श्रेणी पराकाष्ठा के स्तर पर उच्च मानी जाती है।

धर्म ग्रन्थों में वर्णित यज्ञादि कर्म, व्रत व उपासना का महत्व बताया गया है, कि यज्ञादि कर्म अथवा व्रत करने से पाप का पूर्णता क्षय तथा स्वर्ग इत्यादि की प्राप्ति होती है।

धर्म ग्रन्थों में लिखी गई बातें, मानों तो यह पूर्णतः सत्य है। इन्हीं व्रत, उपवासों जिसमें स्वर्ग की प्राप्ति हो। ऐसे विचारों पर यदि मंथन किया जाए, तो ये धार्मिक झुकावों कि ओर तथा हमारे मन को पवित्र रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है, परंतु जब तक हम इन धर्म रूपी कर्मों को अपने व्यवहारिकृत कर्म आचरण में पूर्णतः नहीं उतारेंगे तब तक यह एक प्रकार से असत्य प्रतीत होंगी, जिन्हें व्यवहार में लाना अत्यन्त आवश्यक है, और इन्हीं कर्म रूपी आचरण को व्यवहार में लाने के लिए ज्ञान और योग रूपी आचरण का महत्व बताया है, जो वास्तव में पूर्णतः सत्य है एवं साथ ही यज्ञादि अनुष्ठानों का महत्व भी शास्त्रों में वर्णित है, जो हमारी मानसिकता को दृढ़ता व आधार प्रदान करता है। जिसके परिणामस्वरूप, विवेक बुद्धि के द्वारा हम सही एवं गलत में निर्णय कर पाते हैं तथा इन दोनों विकल्पों के निर्णय से हम सत्य का यथार्थ रूप लोगों के सामने अभिव्यक्त कर पाते हैं।

उदाहरणार्थ— डॉक्टर जब किसी मरीज का शल्य क्रिया द्वारा इलाज करता है, तो वह यह कहता है, कि आपको कोई भी तकलीफ नहीं होगी।

डॉक्टर के इस कथन पर मरीज उस पर विश्वास कर लेता है, जो उसकी मानसिक दृढ़ता पर महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। किंतु जब उसे दर्द की अनुभूति होती है, तब उसे डॉक्टर की बात असत्य प्रतीत होती है, वरन् इसे हम असत्य की श्रेणी में नहीं रखते, बल्कि उसके विश्वास को दृढ़ता प्रदान करने के लिए यथार्थरूप उसके मानसिक स्तर पर सबलता का काम करता है, जो वास्तविक सत्य है, और यह उसके विश्वास का केन्द्र है।

इसी तरह जब एक मनोविकार से ग्रसित व्यक्ति का मनोचिकित्सक इलाज करता है, तो उसके मन में व्याप्त मनोभ्रांतियों को दूर करने के लिए डॉक्टर असत्य उदाहरणों की सहायता से उसके भ्रम को दूर करने का प्रयास करता है, जिसके परिणामस्वरूप चिकित्सक उसके मनोरोगों को दूर करने में सफल हो जाता है, इस तरह असत्य रूपी यथार्थ का यह धरातल सत्य की श्रेणी में आता है। यदि भ्रम से ग्रसित व्यक्ति को सत्य के

मार्ग से अवगत कराना है, तो उसे विभिन्न असत्य रूपी उदाहरणों के द्वारा भ्रम रूपी विकारों से मुक्त कराया जाता है।

सत्य का वास्तविक यथार्थ यह नहीं है, कि उस व्यक्ति की असंख्य गलतियों को बताकर उसे अपनी ही नज़रों में गिरा दिया जाये बल्कि उसे अनेक काल्पनिक उदाहरणों के माध्यम से सही दिशा में अग्रसर किया जाये। यही वास्तविक सत्य है।

(स) अस्तेय

अस्तेय का अर्थ है, “चोरी न करना”²¹। परन्तु स्तेय और अस्तेय में बहुत संशय है। स्तेय का अर्थ किसी अन्य की वस्तु पर अधिकार जताना चोरी अर्थात् स्तेय की श्रेणी में आता है, जबकि अस्तेय का अर्थ किसी की वस्तु या पराई वस्तु पर धर्मपूर्वक अधिकार न करना अस्तेय की श्रेणी में आता है। यदि कोई दूधवाला दूध में पानी मिलाकर बेंचता है, तो उसके द्वारा की गई यह क्रिया स्तेय की श्रेणी में आती है। ठीक इसी प्रकार यदि चिकित्सक किसी मरीज़ के तय किये हुए सीमा से अधिक पैसे लेता है, किसी की जमा पूंजी जो दूसरे के अधिकृत क्षेत्र से बाहर है, काम करने वाले व्यक्ति को तय कमाई से कम तनखाह देना, आलस्य, झूठ बोलना, किसी के साथ कपट करना ये सब स्तेय की श्रेणी में आता है।

ठीक इसके विपरीत अपने कर्मों का धर्मपूर्वक पालन करना, चोरी न करना, जो व्यक्ति चोरी कर रहे हैं, उनका साथ न देने के बजाय उस व्यक्ति के विरुद्ध खड़ा होना ये सब अस्तेय की श्रेणी में आता है। यह आचरण शुद्धि का प्रबलतम पथ है।

(द) ब्रह्मचर्य

ब्रह्मचर्य का अर्थ वाणी, मन तथा शरीर पर संयम करने से है। अन्य अर्थ में वीर्य का पतन न होना ही ब्रह्मचर्य है। ब्रह्मचर्य का एक भिन्न अर्थ यह भी है, कि ज्ञानेन्द्रियों के विषय में से किन्हीं दो का भी (कान, स्वाद) निषेध हो जाये तो वीर्य के पतन को रोकना संभव है। जो व्यक्ति संभोग के समागम से बचते हैं, उन्हें ही ब्रह्मचर्य की श्रेणी में रखा जाता है।

²¹ पं. शर्मा, श्री राम. (1998). *साधना पद्धतियों का ज्ञान और विज्ञान*. द्वितीय संस्कारण. मथुरा : अखण्ड ज्योति संस्थान. पृ. 4.5.

ब्रह्म का अर्थ होता है, ईश्वर को अपना सर्वस्व न्यौछावर कर देना। ईश्वर से संबंधित पुस्तकों का स्वाध्याय करना, अच्छी संगति में रहना, इत्यादि ब्रह्म के संदर्भ में विवेचित है। वीर्य के पतन को रोकना जितना बोलने में सरल है, उसका अनुपालन उतना ही कठिन होता है, क्योंकि हमारा मन विभिन्न विषयों में गमन करता है। अगर हम अच्छी बातों का श्रवण करें, रसनाइंद्रियों के माध्यम से विभिन्न स्वादों पर संयम करें, तो वीर्य के पतन को रोकना सुलभ हो सकता है। साथ ही साथ मन का विभिन्न विषयों पर नियन्त्रण सम्भव हो पाता है। मन में वासनायुक्त कुविचारों का कोई स्थान नहीं होता। इस प्रकार वीर्य के पतन के अवरुद्ध होने से उत्साह, साहस, धैर्य, बुद्धि का तीव्र होना, शरीर का बलशाली होना, आदि स्तरों का विकास होता है।

(इ) अपरिग्रह

परिग्रह को अपरिग्रह बनाने में सिर्फ “अ” का ही अन्तर है। आवश्यकता से अधिक वस्तुओं का संचय करना परिग्रह की श्रेणी में आता है। ठीक इसके विपरीत अपरिग्रह का तात्पर्य आवश्यकता से अधिक भौतिक संसाधन का संचय न करना। आवश्यकता से अधिक धन का संचय करने से मन अनेक उलझनों में घिर जाता है, जिसके कारण परिग्रही व्यक्ति स्थिरता को प्राप्त नहीं कर पाता, जो कि योग मार्ग की साधना में विघ्न का काम करता है। अमीर व्यक्ति अधिक धन अर्जित करने में निम्न श्रेणी के लोगों को कष्ट ही देता है। जिससे उनके भी मन में दूसरे व्यक्ति की वस्तु का अधिग्रहण करने की लालसा जाग्रत हो जाती है। करोड़पति, अरबपति बनने के और निम्न श्रेणी के व्यक्ति लखपति बनने के सपने देखते रहते हैं, जो उनके मन में परिग्रह का भाव जाग्रत करते हैं। उच्च श्रेणी के व्यक्तियों को अधिक धन अर्जित करने की लालसा न रखते हुए आवश्यकता से अधिक धन को सन्मार्ग की ओर लगाना चाहिए, जिससे निम्न श्रेणी के व्यक्ति अपनी जरूरतों का पूर्ण रूप से वहन कर सकें, तथा संतोष के साथ दोनों ही वर्ग (उच्च वर्ग तथा निम्न वर्ग) अपना जीवन शांति से बिता सकें।

2. नियम

“शौचसंतोषतपः स्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः।”²²

नियम के पालन से अन्तःकरण की शुद्धि होती है।

(अ) शौच

(ब) संतोष

(स) तप

(द) स्वाध्याय

(इ) ईश्वर प्रणिधान

(अ) शौच

शौच से तात्पर्य बाह्य एवं अन्तःस्तर यानि मन की शुद्धि होती है। मूलतः शौच को मन की शुद्धि माना जाता है। मल शुद्धि के द्वारा मानव शरीर विभिन्न प्रकार की बीमारियों से बचा रहता है।

इसके साथ-साथ हमारे शरीर के विभिन्न स्तरों में रोम कूप पाये जाते हैं, जिसके फलस्वरूप इन रोमकूपों की निरन्तर हमें सफाई करते रहना चाहिए। सफाई से शरीर के रोम कूप स्वस्थ रहते हैं, किसी प्रकार की गन्दगी हमारे रोम कूपों में जमा नहीं होती।

शरीर की बाह्य शुद्धि के साथ-साथ मन के विचारों की शुद्धि अत्यन्त आवश्यक है। मन में चलने वाले कुसंगत विचारों से व्यक्ति को नित्य ही बचना चाहिए। अगर हमारा मन साफ रहेगा तो परिणामतः हमारा मन स्वस्थ रहेगा। शरीर की सफाई होने से मन में व्याप्त सकारात्मक विचारों का स्तर बढ़ जाता है। साथ ही साथ सात्विक भोजन के सेवन से मन में सात्विक विचारों का उदय होता है, जिसके परिणामस्वरूप मन में साहस, धैर्य, उत्साह तथा परोपकार की भावना जाग्रत होती है।

²² पातंजल योगसूत्र- 2/32

(ब) संतोष

संतोष से तात्पर्य मन का हर विषम परिस्थितियों में सुखी रहना है। जो मिले भगवान का प्रसाद समझकर उसे ग्रहण करना चाहिए। ऐसा व्यक्ति किसी भी प्रकार की बीमारियों से ग्रसित नहीं होता और सदैव प्रसन्न भाव में रहता है।

संतोषी व्यक्ति की बुद्धि हर विषम परिस्थिति में सही और गलत का निर्णय करने का सामर्थ्य रखती है। उसे बड़ा सा बड़ा दुःख भी राई के समान लगता है, और वह इन मुसीबतों से निकल जाता है। जबकि कई लोग छोटे से छोटे दुःख का सामना भी नहीं कर पाते क्योंकि उनमें संतोष की भावना का अभाव रहता है, और ऐसे व्यक्ति सदैव ईर्ष्या, द्वेष, घृणा की भावना से ग्रसित रहते हैं।

संतोषी गुण वाले व्यक्ति में दृढनिश्चय की प्रबल भावना होती है, जिसके परिणामस्वरूप उनमें किसी भी चीज को अर्जित करने की शक्ति अधिक होती है।

(स) तप— “तप का तात्पर्य है ‘कष्ट सहन’ है।”²³

तप का अर्थ द्वन्द्वों से लिया गया है। द्वन्द्व अर्थात् जोड़े जिसमें सर्दी-गर्मी, भूख-प्यास इत्यादि शामिल है। पुराणों में वर्णित है, कि किसी बड़े कार्य को करने से पहले उस समय के व्यक्ति तप किया करते थे। जिसके परिणामस्वरूप कठिन दिखने वाले कार्य भी आसानी से हो जाते थे। परन्तु आज के इस घोर कलयुग में लोग मेहनत से जी चुराते हैं। आलस्य को ही अपना धर्म समझते हैं। ऐसे आलसी व्यक्तियों को जो भी मिले उसमें ही गुजारा कर लेते हैं। ऐसे व्यक्ति पाप के भागीदार होते हैं।

कई पुराणों में धर्म आचरण एवं उपवास का महत्व बताया गया है। इस प्रकार के धर्म आचरण एवं व्रत से हमारे अन्दर कई प्रकार की सामर्थ्य शक्तियों का उदय होता है, और इन शक्तियों के परिणामस्वरूप हम बड़े से बड़े कार्य को सहज रूप से कर पाते हैं। कहा भी गया है, कि तप से कई सामर्थ्य शक्तियों का उदय होता है एवं हमारे सद्गुणों का विकास होता है। बिना कष्ट पाए कोई भी कार्य परिणामरूप में सफल नहीं हो सकता है।

²³ पं. शर्मा, श्री राम. (1998). *साधना पद्धतियों का ज्ञान और विज्ञान*. द्वितीय संस्कारण. मथुरा : अखण्ड ज्योति संस्थान. पृ. 4.13.

(द) स्वाध्याय

स्वाध्याय का वास्तविक अर्थ होता है “स्वयं का अध्ययन”²⁴ करना या अपने आप का अध्ययन। स्वाध्याय में अपने आप का अध्ययन अपने विचारों के मंथन करने से है। बाकि पुस्तकें तो मात्र हमारी सहायता करती हैं। स्वाध्याय में अपने ईष्ट देव अथवा गुरु हमारी आने वाली बाधाओं को दूर कर सकते हैं। किताबें तो हमारा केवल पथ प्रदर्शक होती हैं। किताबों में लिखी बातें हमारे लिए पथ प्रदर्शक तो बनती हैं, लेकिन गलत एवं सही का निर्णय हमें हमारे स्वमूल्यांकन से प्राप्त होता है। जीवन की हर कठिनाई को हमें स्वयं ही पार करना होता है। एक समय ही है, जो सारथी बनकर हमारा पथ प्रशस्त करता है तथा हमारी सहायता करता है। स्व के मूल्यांकन से हम गलत एवं सही के बीच निर्णय कर पाते हैं, और अपनी विवेक बुद्धि के द्वारा हम विषम परिस्थितियों में सही निर्णय की ओर अग्रसर होते हैं। ये सब स्वाध्याय से ही संभव है।

(इ) ईश्वर प्राणिधान

प्राणिधान का तात्पर्य ईश्वर को अपने अन्तःकरण में स्थापित करने से है।

ईश्वर को हर व्यक्ति अपने सुख-दुःख, मान-अपमान का साथी समझता है। अगर व्यक्ति के साथ अच्छा हुआ तो बहुत खुश होकर तरह-तरह के पकवान ईश्वर के समक्ष प्रस्तुत करता है। यदि वह व्यक्ति अपने कर्मों के कारण कष्ट का भागी हुआ, तो उसकी सहभागिता का कारण ईश्वर को मानता है और उसे बहुत बुरा भला कहता है।

उदाहरणार्थ— ईश्वर मानो सुख-दुःख का व्यापारी बन गया है। ईश्वर अपने भक्तों से निस्वार्थ, निष्कपट, प्रेम चाहता है, जिसमें कोई छल न हो। ईश्वर स्वार्थ की सीमा से परे है। अगर उस ईश्वर को अपने अन्तःकरण में स्थापित कर लिया जाये तो हमें असीम सुख एवं अथःआनन्द की प्राप्ति होती है। इस प्रकार का व्यक्ति असीम ऐश्वर्य एवं आनन्द का स्वामी होता है। वह शान्त प्रिय एवं विवेक बुद्धि वाला होता है। किसी भी प्रकार के दुर्गुण एवं कुपथिक विचार उसे घेर नहीं पाते हैं।

²⁴ दशोरा, नन्दलाल. (2014). *पातंजल योगसूत्र*, हरिद्वार : रणधीर-प्रकाशन, पृ. 116.

3. आसन

“स्थिरसुखमासनम् ।।”²⁵

“स्थिर और सुखपूर्वक बैठने का नाम आसन है।”²⁶ व्यक्ति के मन में विभिन्न प्रकार के विचार चलते हैं, जिससे उसका असर शारीरिक क्रियाओं में देखने को मिलता है।

उदाहरणार्थ— पैर हिलाना, हाथ हिलाना आदि क्रियाएँ। अतः इन क्रियाओं को चेष्टा रहित बनाने के लिए पाषाण के समान किसी भी आसन में स्थिर एवं सुख पूर्वक बैठने का अभ्यास करना चाहिए। जिसके परिणामस्वरूप हमारे शरीर की क्रियायें चेष्टा रहित हो जाती हैं। किसी भी आसन में स्थिर एवं सुख पूर्वक बैठने के साथ-साथ गर्दन और कमर सीधी होनी चाहिए। जिसके फलतः शरीर में ऊर्जा का प्रवाह अच्छे से एवं स्थिर पूर्वक हो सके, जिसके परिणामतः चित्त वृत्तियों के साथ-साथ सभी विचारों का प्रवाह रुक जाता है।

4. प्राणायाम

“तस्मिन् सति श्वासप्रश्वासयोगतिविच्छेदः प्राणायामः ।।”²⁷

जब व्यक्ति के प्राण की बाह्य और आभ्यन्तर क्रिया रुक जाती है, तब उसे प्राणायाम की श्रेणी में रखा जाता है। प्राणायाम की यह प्रक्रिया आसन के बाद ही संभव होती है। पतंजलि के अनुसार प्राणायाम मुख्यतः चार प्रकार का होता है,

“बाह्याभ्यन्तरस्तम्भवृत्तिर्देशकालसंख्याभिः परिदृष्टो दीर्घसूक्ष्म”²⁸

“बाह्याभ्यन्तरविषयाक्षेपी चतुर्थः ।।”²⁹

(अ) बाह्य वृत्ति

जब श्वास की प्रक्रिया में श्वास बाहर निकलती है, उसे वहीं पर स्तंभित कर देना ही बाह्य वृत्ति कहलाती है। जिससे दूसरे शब्दों में रेचक कुम्भक भी कहते हैं।

²⁵ पातंजलयोग सूत्र— 2/46

²⁶ गोयन्दका, हरिकृष्णदास. *महर्षि पतंजलि कृत योगदर्शन (योगसूत्र)* 37वाँ पुनर्मुद्रण. गोरखपुर : गीताप्रेस. पृ. 72.

²⁷ पातंजलयोग सूत्र— 2/49,

²⁸ पातंजलयोग सूत्र— 2/50

²⁹ पातंजलयोग सूत्र— 2/51

(ब) आभ्यन्तर वृत्ति

श्वास की प्रक्रिया में जब श्वास अन्दर ली जाती है, तो उसे वहीं पर स्तम्भित कर देना ही आभ्यन्तरवृत्ति के अन्तर्गत आता है। इसे पूरक कुम्भक भी कहते हैं।

(स) स्तम्भ वृत्ति

जब प्राणवायु स्वतः ही भीतर आ रही हो या बाहर जा रही हो। जहाँ भी प्राण हो उसको वहीं रोक देना ही स्तम्भवृत्ति के अन्तर्गत आता है।

(द) बाह्याभ्यन्तरविषयाक्षेपी

प्राणवायु बाहर या भीतर जा रही हो तथा मन में कोई चिन्तन किये बिना प्राण वायु भीतर जा रही है या बाहर जा रही है, उसे सोचे-विचारे बिना वहीं रोक देना ही बाह्याभ्यन्तर विषयाक्षेपी चतुर्थ प्राणायाम है।

5. प्रत्याहार

“स्वविषयासम्प्रयोगे चित्तस्वरूपानुकार इवेन्द्रियाणां प्रत्याहारः।”³⁰

प्राणायाम के अभ्यास से नाड़ियाँ निर्मल होती हैं और मन में किसी भी प्रकार का विकार नहीं रहता। जिसके फलस्वरूप इन्द्रियाँ अपने बाह्यस्वरूप विषयों से अन्तर्मुखी हो जाती हैं, जिससे मन एकाग्रचित्त होकर अपने विषयों में लीन हो जाता है।

6. धारणा

“देशबन्धश्चित्तस्य धारणा।”³¹

ध्यान से पहले धारणा का अभ्यास करना होता है। इसमें चित्त को किसी एक पदार्थ पर स्तम्भित किया जाता है। जिसमें चित्त की वृत्ति का प्रवाह उस पदार्थ के अनुरूप हो जाता है, उसे धारणा की संज्ञा दी गई है।

³⁰ पातंजलयोग सूत्र- 2/54

³¹ पातंजलयोग सूत्र- 3/1

7. ध्यान

“तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम्।”³²

जिस वस्तु पर ध्यान किया जा रहा है, उसी में चित्त को लगाये रखना ही ध्यान की अवस्था कहलाती है, इसमें दूसरे किसी तरह के विचारों का उदय नहीं होता है।

8. समाधि

“तदेवार्थमात्रनिर्भासं स्वरूपशून्यमिव समाधिः।”³³

ध्यान से समाधि तक पहुँचने की यहाँ तैयारी होती है। इसमें ध्यान और ध्याता का स्वरूप शून्य हो जाता है। केवल ध्येय मात्र की प्रतीति बनी रहती है, उसे समाधि कहते हैं। इसमें जीवात्मा का परमात्मा से एकाकार होता है, इसमें ध्येय परमात्मा का स्वरूप है।

1.3.5 मंत्रयोग

“मंत्र शब्द ‘मन्’ धातु से बना है, जिसका अर्थ विचारना अथवा चिन्तन करना है। ‘त्र’ का अर्थ त्राण से है। अर्थात् मंत्र शब्द का अर्थ हुआ, चिन्तन के माध्यम से मुक्ति।”³⁴

पतंजलि के अनुसार

“तस्य वाचकः प्रणवः”³⁵
एष धर्मः स्मृतः

उस ईश्वर का नाम प्रणव (ॐ) ही सभी मंत्रों में सर्वश्रेष्ठ है।

मंत्र जप के प्रकार

“मंत्र जप में मुख्यतः चार प्रकार होते हैं।”³⁶

(अ) वाचिक जप (सार्वभौमिक जप)

³² पातंजल योगसूत्र- 3/2

³³ पातंजल योगसूत्र- 3/3

³⁴ <https://www.yaasyc.in/2021/04/Mantra-Yoga-In-Hindi.html>

³⁵ पातंजल योगसूत्र- 1/27

³⁶ <https://www.yaasyc.in/2021/04/Mantra-Yoga-In-Hindi.html>

(ब) पश्यन्ति

(स) उपांशु जप

(द) परा जप

(अ) वाचिक जप या सार्वभौमिक जप

वह जप जिसका उच्चारण उच्च स्वर में किया जाना वाचिक जप कहलाता है। इस मंत्र का उच्चारण सर्वव्यापक होने के कारण सभी लोगों को सुनाई देता है।

(ब) पश्यन्ति

इस जप का उच्चारण माला, श्वास के द्वारा या किसी प्रतीक चिन्ह पर ध्यान केन्द्रित करके एकाग्रता के साथ किया जाता है।

(स) उपांशु जप

होठों से फुस्फुसाहट करते हुए जो जप किया जाता है। (उसे उपांशु जप कहते हैं।) इस जप के प्रभाव से स्मरण शक्ति का विकास होता है, तथा व्यक्ति का मन बाहर के सभी केन्द्रों से हटकर आत्मकेन्द्रित हो जाता है।

(द) परा जप

यह जप मन में लगातार स्वतः चलता रहता है।

1.4 योग का महत्व

1.4.1 योग का मानव जीवन पर प्रभाव

(1) यौगिक दृष्टि से योग का मानव जीवन पर प्रभाव

(2) दैहिक प्रभाव

(3) मन पर प्रभाव

(4) अध्यात्म सम्बन्धी प्रभाव

(5) भावनात्मक प्रभाव

(6) पारिवारिक जीवन पर प्रभाव

(7) सामाजिक प्रभाव

(1) यौगिक दृष्टि से योग का मानव जीवन पर प्रभाव

आज का व्यक्ति इस आधुनिक युग में तरह-तरह की समस्याओं का सामना कर रहा है। इन समस्याओं के हल के लिए योग ही मात्र एक ऐसा विकल्प है, जो व्यक्ति को विपरीत परिस्थितियों से लड़ने के लिए सुदृढ़ता एवं सबलता प्रदान करता है।

(2) दैहिक प्रभाव

शारीरिक महत्व के लिए योग की अपनी ही महत्वपूर्ण भूमिका है। व्यक्ति अपने सुदृढ़ एवं कार्य क्षमता को बढ़ाने के लिए योग को एक विकल्प के रूप में चुन रहा है। आजकल बड़ी-बड़ी कम्पनियों में लोगों की शारीरिक एवं मानसिक क्षमता बढ़ाने के लिए योग प्रशिक्षक को रखा जा रहा है, जिससे कर्मचारी न थकें और अच्छे से काम करके कंपनी को अच्छा रिजल्ट दे सकें।

(3) मन पर प्रभाव

योग शारीरिक स्वास्थ्य के साथ मानसिक सबलता प्रदान करता है तथा विभिन्न प्रकार के रोगों से लड़ने के साथ-साथ रोग प्रतिरोधक क्षमता का भी विकास करता है। आज की युवा पीढ़ी तरह-तरह के मानसिक विकारों से ग्रसित हैं। ऐसे में योग व्यक्ति को मानसिक विकारों से लड़ने के लिए दृढ़ता प्रदान करता है।

(4) अध्यात्म सम्बन्धी प्रभाव

मनुष्य के जीवन का उद्देश्य कैवल्य प्राप्त करना है। किन्तु पूर्व जन्मों के संचित संस्कार उसे मोक्ष प्राप्ति के मार्ग में अवरुद्ध करते हैं। ऐसे में योग तथा आध्यात्मिकता का बहुत ही गहरा संबंध है। योग के मार्ग से गुजरकर हम आध्यात्मिकता के पहलू को समझ सकते हैं। जब मनुष्य योग रूपी आचरण का पालन करता है, तो उस साधक को शारीरिक व मानसिक सबलता प्राप्त होती है, तथा उसका चित्त विकारों से मुक्त हो जाता है, और समाधि के माध्यम से उस साधक का परमात्मा से एकत्व हो जाता है।

(5) भावनात्मक प्रभाव

योग भावरूपी आवेगों को नियंत्रित करने के साथ प्राण तथा मन की न्यूनता एवं अधिकता को संयमित करता है। जिस व्यक्ति का प्राण तथा मन कमजोर होता है, उस व्यक्ति के भावनात्मक पहलू पर अधिक प्रभाव पड़ता है। “यदि व्यक्ति में मानसिक ऊर्जा का प्रवाह अधिक है और प्राण का स्तर कम है, तो वह आलस्य से घिर जाता है तथा किसी भी काम में वह रुचि नहीं लेता तथा इसके विपरीत यदि व्यक्ति में प्राण की अधिकता व मन की ऊर्जा कम है, तो वह लोगों के लिए विध्वंसकारी हो सकता है।”³⁷

योग ही व्यक्ति के भावनात्मक स्तर को सबलता एवं दृढ़ता प्रदान करता है, जिसके फलस्वरूप व्यक्ति सही व गलत का निर्णय करने में सक्षम होता है।

³⁷ सरस्वती, स्वामी सत्यानन्द. (2013). *बच्चों के लिए योग शिक्षा 1*. द्वितीय संस्करण. मुंगेर (बिहार) : योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट. पृ. 4.

(6) परिवारिक जीवन पर प्रभाव

योग व्यक्ति को दया, करुणा एवं प्रेम की भावना सिखाता है, जो कि परिवारिक महत्व के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण है। योग में गृहस्थ जीवन को सबसे बड़ा धर्म कहा गया है। गृहस्थ जीवन योग के आठ अंगों का पूर्णतः परिपालन करता है। जिसके फलस्वरूप व्यक्ति में एकाकीपन, अलगाव आदि समाप्त हो जाते हैं।

(7) सामाजिक प्रभाव

व्यक्ति अपने आपको पूर्ण रूप से विकसित समाज के द्वारा ही कर पाता है। उसकी सम्पूर्णता का विकास समाज में रहकर ही पूर्णतया होता है। विपरीत परिस्थितियों का सामना वह इसी समाज के सिखाये हुए नियमों के अनुसार करता है। योग सामाजिक जीवन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है, जो व्यक्ति को मानसिक दृढ़ता, सबलता तथा समाज में जीने के लिए आधार प्रदान करता है, तथा योग के माध्यम से व्यक्ति में लोगों के प्रति मित्रता का भाव विकसित होता है।

1.4.2 योग का महत्व विभिन्न क्षेत्रों में

(1) योग की चिकित्सा में भूमिका

(2) शोध में भूमिका

(3) स्वप्रबन्धन में भूमिका

(4) साधना पद्धति में भूमिका

(5) जीवन प्रबन्धन में भूमिका

(6) शिक्षा जगत में भूमिका

(1) योग की चिकित्सा में भूमिका

योग चिकित्सा के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान रखता है। योग कई प्रकार के रोगों से लड़ने की क्षमता प्रदान करता है। योग का चिकित्सा से नाता कई वर्षों पुराना है। दिन प्रतिदिन योग के अभ्यास से रोग प्रतिरोधक क्षमता का विकास होता है। प्राणायाम के अभ्यास से फेफड़ों की क्षमता कई गुना बढ़ जाती है। आज के आधुनिक समय में योग की महत्ता को समझा गया है, इसलिए कई चिकित्सालय में योग प्रशिक्षक रखे जाते हैं। योग को योग थैरपी के रूप में कई चिकित्सालयों में स्वीकृत किया है। योग कई बीमारियों जैसे, मधुमेह, मोटापा, गठियावात, माइग्रेन, बी.पी. आदि में लाभप्रद है।

(2) शोध में भूमिका

आज का युग किसी भी क्षेत्र में प्रमाणों तथा तथ्यों पर ही विश्वास करता है। पहले के समय में ऋषि-मुनि ध्यान के माध्यम से ज्ञान का साक्षात्कार कर जनहित के लिए उपयोगी शिक्षा प्रदान करते थे। किन्तु आज के वैज्ञानिक युग में, पूर्व में ऋषि-मुनियों द्वारा साक्षात्कार या अनुभवों पर अनुसंधान चल रहा है। जो शोध के बाद प्रामाणिक रूप से यथार्थ पाई गई।

(3) स्वप्रबन्धन में भूमिका

स्वप्रबन्धन का अर्थ है, स्वयं को नियोजित किस प्रकार से, किया जाये तथा अपनी क्षमता को बढ़ाना। आज की जीवन शैली में भाग-दौड़ होने के कारण व्यक्ति अपने किसी भी कार्य में अपना सौ प्रतिशत नहीं दे पा रहा है, जिसके फलस्वरूप लोगों में कार्यक्षमता की कमी आई है। व्यक्ति अपने आप को संतुलित करने के लिए योग की सहायता ले रहा है, जिसके कारण जनसमूह का प्रतिनिधित्व करने वाले प्रत्येक व्यक्ति में कार्यक्षमता व मानसिक क्षमता का विकास हो रहा है। जिससे व्यक्ति अपना स्वप्रबन्धन कर पा रहा है।

(4) साधना में भूमिका

साधना के क्षेत्र में व्यक्ति अपने नये आयामों का परिष्कार कर रहा है, जिसके फलस्वरूप वह असाधारण से दिखने वाले कार्य को भी सरल एवं सुनियोजित तरीके से कर पा रहा

है। साधना के द्वारा साधक अपनी साधना से प्राप्त शक्तियों का उपयोग करके आत्मोत्कर्ष तथा आध्यात्मिक क्षेत्र में स्वयं को जानने की अपनी यात्रा को पूर्ण कर रहा है। जिसके परिणामस्वरूप उसमें कई असाधारण शक्तियों का उदय होता है, और इन असाधारण शक्तियों का उपयोग साधक अपने आत्मकल्याण के लिए कर रहा है।

(5) जीवन प्रबन्धन में भूमिका

जीवन प्रबन्धन के क्षेत्र में व्यक्ति को अपने बाह्य स्वरूप एवं अन्तःस्वरूप में समायोजन करना कठिन होता है, इसलिए इन दोनों स्वरूपों को संतुलित करने के लिए योग एवं साधना दोनों की आवश्यकता पड़ती है। इन योग रूपी साधनों का प्रयोग कर व्यक्ति अपनी असाधारण शक्तियों को जाग्रत कर, जीवन के हर क्षेत्र में सफलता को प्राप्त करता है। जिसके परिणामस्वरूप वह बाह्य एवं अन्तः स्वरूप को आसानी से सन्तुलित कर पाता है, और भविष्य में आने वाली जटिल परिस्थितियों को आसानी से सुलझा लेता है।

(6) शिक्षा जगत में भूमिका

योग अपना दायरा शिक्षा के क्षेत्र में भी बढ़ा चुका है। बच्चों में सही आचरण के विकास के लिए योग एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। योग के माध्यम से ही बच्चों में बुद्धि का स्तर बढ़ता है, तथा उनकी एकाग्रता में सुधार होता है। ध्यान एवं त्राटक के माध्यम से बच्चों में स्मरण एवं एकाग्रता शक्ति का उदय होता है। जिसका उपयोग वे कई असाधारण कार्यों में करते हैं और उससे बच्चे अपने कार्यों में सफल होते हैं। चाहे बच्चे हों या वयस्क सभी में योग के माध्यम से उनकी असाधारण क्षमताओं का दायरा बढ़ जाता है।

1.5 योग की भ्रांतियाँ

- (1) योग केवल हिन्दू धर्म के लिए है।
- (2) योग एक जादू है।
- (3) योग केवल शारीरिक व्यायाम तक सीमित है।
- (4) योग केवल भगवा रंग के पहने हुए कपड़ों को समझा जाता है, कि योग केवल साधु ही कर सकते हैं।
- (5) योग मोटे व्यक्तियों के लिए नहीं है।

(1) योग केवल हिन्दू धर्म के लिए है

योग समग्र स्वास्थ्य की बात करता है, इसलिए यह किसी भी धर्म से जुड़ा हुआ नहीं है, अपितु यह समस्त मनुष्यों के स्वास्थ्य की बात करता है, इसलिए आरोग्यता की दृष्टि से योग सभी धर्मों को स्वीकार करता है।

(2) योग एक जादू है

योग एक जादू है, यह तथ्य मिथ्या है, बल्कि योग करते-करते हमारे शरीर की संपूर्ण रूग्णता दूर हो जाती है, और यह जादू नहीं, अभ्यास का चमत्कार है, जिसके फलस्वरूप हमारा शरीर कांतिमय हो जाता है।

(3) योग केवल शारीरिक व्यायाम तक ही सीमित है

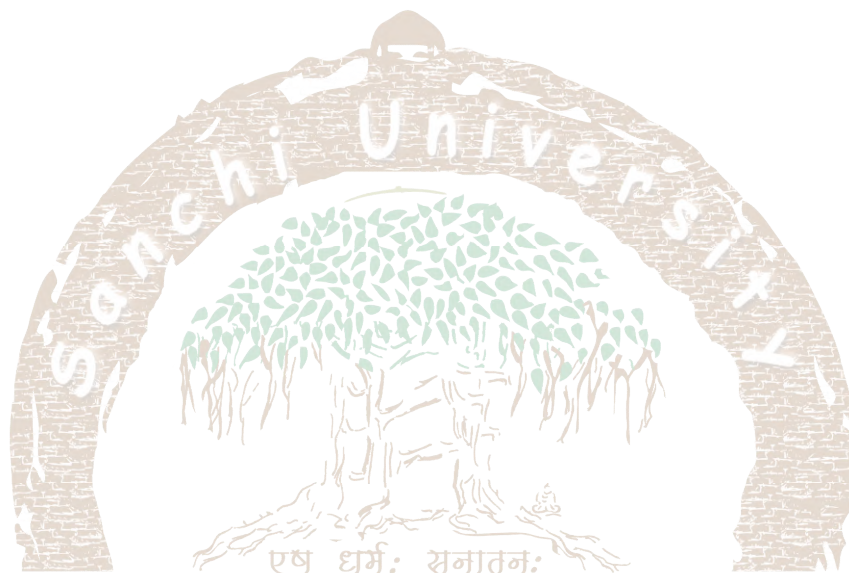
योग शारीरिक व्यायाम नहीं, अपितु सम्पूर्ण स्वास्थ्य की कुन्जी है। शारीरिक व्यायाम से केवल शरीर की बाह्य मांसपेशियाँ ही पुष्ट होती हैं, परंतु योग के द्वारा शारीरिक एवं मानसिक आरोग्यता प्राप्त होती है।

(4) योग केवल भगवा रंग के पहने हुए कपड़ों को समझा जाता है, कि योग केवल साधु ही कर सकते हैं

योग केवल भगवा रंग के कपड़े पहने साधुओं के लिए नहीं अपितु सम्पूर्ण संसार के व्यक्तियों के लिए है। यह हर आयु, वर्ग के व्यक्तियों के लिए है।

(5) योग मोटे व्यक्तियों के लिए नहीं है

योग केवल छरहरी काया वाले व्यक्तियों के लिए होता है, यह तथ्य मिथ्या है। क्योंकि योग को हर व्यक्ति चाहे वह पतला हो या मोटा या किसी भी आयु वर्ग का हो कर सकता है।



द्वितीय अध्याय

मनोविज्ञान की संक्षिप्त अवधारणा

- 2.1 मनोविज्ञान का अर्थ एवं परिभाषाएँ
- 2.2 मनोविज्ञान का इतिहास एवं विकास
- 2.3 मनोविज्ञान के विविध आयाम
- 2.4 मनोविज्ञान के प्रकार
- 2.5 भारतीय मनोविज्ञान एवं योग
- 2.6 भारतीय मनोविज्ञान एवं पाश्चात्य मनोविज्ञान में अंतर

2 मनोविज्ञान की संक्षिप्त अवधारणा

2.1 मनोविज्ञान का अर्थ एवं परिभाषाएँ

मनोविज्ञान का अर्थ

“मनोविज्ञान मनुष्य की मानसिक प्रक्रिया का अध्ययन है। इस अध्ययन के लिए मानसिक प्रक्रिया को ज्ञानात्मक, भावात्मक तथा इच्छात्मक अनुभव में किया जा सकता है। संवेदना, प्रत्यक्षीकरण, चिन्तन, विचार तथा तर्क आदि ज्ञानात्मक अनुभव के ही विशिष्ट रूप हैं। इसी प्रकार भावना, सवेंग आदि भावात्मक अनुभव के और विभिन्न नैसर्गिक या अर्जित इच्छाएं और प्रेरणाएँ इच्छात्मक अनुभव के विभिन्न रूप हैं।”¹

मनोविज्ञान की परिभाषा

“स्कनर— मनोविज्ञान, व्यवहार और अनुभव का विज्ञान है।”²

“मन— आधुनिक मनोविज्ञान का संबंध व्यवहार की वैज्ञानिक खोज से है।”³

“पिल्सबरी— मनोविज्ञान की सबसे संतोषजनक परिभाषा मानव व्यवहार के विज्ञान के रूप में की जा सकती है।”⁴

“एडकिन्सन, एटकिन्सन, स्मीथ तथा हिलगार्ड—मनोविज्ञान मानसिक प्रक्रियाओं एवं व्यवहार का वैज्ञानिक अध्ययन है।”⁵

¹ शेरजंग, निर्मला. (1954), *मनोविज्ञान*. प्रथम संस्करण. बनारस: सरस्वती प्रेस पृ. 01

² पाठक, पी०डी०. (1975). *शिक्षा मनोविज्ञान*. छटा संस्करण. आगरा : विनोद पुस्तक मंदिर . पृ. 06.

³ पाठक, पी०डी०. (1975). *शिक्षा मनोविज्ञान*. छटा संस्करण. आगरा : विनोद पुस्तक मंदिर . पृ. 06.

⁴ पाठक, पी०डी०. (1975). *शिक्षा मनोविज्ञान*. छटा संस्करण. आगरा : विनोद पुस्तक मंदिर . पृ. 06.

⁵ सिंह, अरुण कुमार, सिंह, आशीष कुमार. (2002). *सरलसामान्य मनोविज्ञान*. तृतीय संस्करण . दिल्ली : मोतीलाल बनारसीदास . पृ. 02.

2.2 मनोविज्ञान का इतिहास एवं विकास

“मनोविज्ञान अंग्रेजी के शब्द “Psychology” से मिलकर बना है। इसे अगर दो भागों में रूपांतरित किया जाए तो Psyche का पर्याय आत्मा एवं logos का अभिप्राय अध्ययन से है।”⁶

इस वाक्य को ध्यान से रखते हुये मनोविज्ञान का अभिप्राय आत्मा की विवेचना अथवा अध्ययन से है।

आधुनिक मनोविज्ञान का विस्तार, पश्चात्य मनोविज्ञान की तुलना में अधिक हुआ है। जबकि पश्चात्य मनोविज्ञान जो कि आधुनिक मनोविज्ञान के काल से अत्यंत संक्षिप्त है।

“मनोविज्ञान के इतिहास को मूलतः दो भागों में बांटा जा सकता है।”⁷

(1) पूर्व वैज्ञानिक काल

(2) वैज्ञानिक काल

(1) पूर्व वैज्ञानिक काल

“पूर्व वैज्ञानिक काल की शुरुआत ग्रीक दार्शनिकों जैसे प्लेटो, अरस्तू, हिपोक्रेटस आदि के अध्ययनों एवं विचारों से प्रारंभ होकर 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध तक विशेषकर 1878 तक मना जाता है। पूर्व वैज्ञानिक काल की घटनाएँ जिनका आधुनिक मनोविज्ञान पर प्रभाव पड़ा है, को निम्नांकित पाँच भागों में बांटा गया है:—”⁸

(अ) शारीरिक गठन कारक

(ब) मन-शरीर समस्या

(स) जन्मजात विचार

⁶ सिंह, अरुण कुमार, सिंह, आशीष कुमार. (2017). *आधुनिक सामान्य मनोविज्ञान*. ग्यारहवाँ संस्करण. दिल्ली : मोतीलाल बनारसीदास. पृ. 13.

⁷ सिंह, अरुण कुमार, सिंह, आशीष कुमार. (2017). *आधुनिक सामान्य मनोविज्ञान*. ग्यारहवाँ संस्करण. दिल्ली : मोतीलाल बनारसीदास. पृ. 13.

⁸ सिंह, अरुण कुमार, सिंह, आशीष कुमार. (2017). *आधुनिक सामान्य मनोविज्ञान*. ग्यारहवाँ संस्करण. दिल्ली : मोतीलाल बनारसीदास. पृ. 13-15.

(द) मानव स्वभाव

(इ) चेतना तथा संवेदी प्रक्रियाएँ

(अ) शारीरिक गठन कारक

इस सिद्धांत के अनुसार मनुष्य के व्यवहार को प्रभावित करने वाले चार प्रकार के द्रव, शरीर में पाये जाते हैं। “जिनके नाम हैं — पीला पित्त, काला पित्त, रक्त तथा श्लेष्मा।”⁹

जब पीला पित्त शरीर में तीन द्रवों (काला पित्त, रक्त तथा श्लेष्मा) की तुलना में ज्यादा मात्रा में पाया जाता है। तब ऐसे व्यक्ति में आक्रांता (आक्रामक) का स्तर अधिक उच्च पाया जाता है।

काला पित्त, जब शरीर में अन्य तीन द्रवों (पीला पित्त, रक्त तथा श्लेष्मा) की अपेक्षा अधिक मात्रा में पाया जाता है तब व्यक्ति का व्यवहार शांत प्रवृत्ति का होता है।

जब रक्त का स्तर शरीर में अन्य तीन की अपेक्षा (काला पित्त, पीला पित्त तथा श्लेष्मा) अधिक मात्रा में पाया जाता है तो व्यक्ति खुशमिजाज एवं आशावान प्रवृत्ति का होता है।

ठीक इसी प्रकार श्लेष्मा की मात्रा अन्य तीन द्रवों (काला पित्त, पीला पित्त तथा रक्त) की अपेक्षा अधिक मात्रा में पाया जाता है, तो व्यक्ति थका हुआ आलसी प्रवृत्ति का होता है।

(ब) मन— शरीर समस्या

पूर्ववैज्ञानिक काल में मन तथा शरीर पर मत प्रस्तुत किये गये हैं।

“जिसमें कुछ ग्रीक दार्शनिक जैसे अगस्टाइन तथा थोमस का मत था कि मन तथा शरीर दो अलग चीजें हैं, इन दोनों में किसी प्रकार का संबंध नहीं है। परंतु देकार्त, लिबनिज तथा स्पिनोजा आदि ने इसका विरोध किया और बतलाया कि मन तथा शरीर दोनों ही एक दूसरे से संबंधित हैं।”¹⁰

⁹ सिंह, अरुण कुमार, सिंह, आशीष कुमार. (2017). *आधुनिक सामान्य मनोविज्ञान*. ग्यारहवाँ संस्करण. दिल्ली : मोतीलाल बनारसीदास. पृ. 14.

¹⁰ सिंह, अरुण कुमार, सिंह, आशीष कुमार. (2017). *आधुनिक सामान्य मनोविज्ञान*. ग्यारहवाँ संस्करण. दिल्ली : मोतीलाल बनारसीदास. पृ. 14.

(स) जन्मजात विचार

“कुछ दार्शनिक जैसे देकर्त का मत था कि प्रत्येक व्यक्ति में जन्म से ही कुछ विचार होते हैं, परंतु अन्य दार्शनिक जैसे लॉक का मत था कि व्यक्ति जन्म के समय ‘टेबूला रासा’ होता है अर्थात् उसका मस्तिष्क एक कोरा कागज के समान होता है और बाद में उसमें नए-नए अनुभवों से नए-नए विचार उत्पन्न होते हैं। लॉक का स्पष्ट मतलब यह था कि विचार जन्मजात नहीं बल्कि अर्जित होते हैं।”¹¹

(द) मानव स्वभाव

रूसो के मन्तव्यानुसार मनुष्य का अच्छा गुण जन्म से ही विकसित होता है, किंतु समाज के कड़वें अनुभव व्यक्ति के स्वभाव को बदल देते हैं। इसके विपरीत सपेंसर के अनुसार व्यक्ति में स्वार्थ एवं आक्रामकता जैसी नकारात्मक गुण जन्म से ही पाये जाते हैं, जिसका नियंत्रण समाज द्वारा ही संभव है।

(इ) चेतना तथा संवेदी प्रक्रियाएँ

“19 वीं शताब्दी के अधिकतर ब्रिटिश दार्शनिकों द्वारा चेतना में होने वाले विचारों का जोर-शोर से अध्ययन प्रारंभ किया गया है। इन दार्शनिकों में जेम्स मिल तथा उनकी पुत्र जोन स्टूअर्ट मिल का नाम अधिक मशहूर था।”¹²

(2) वैज्ञानिक काल

बहुत से आधुनिक काल के विचारक इस बात को मानते हैं कि मनोविज्ञान के वैज्ञानिक कालक्रम की शुरुआत 1879 से हुई है।

लगभग इसी वर्ष के आसपास “विल्हेल्म वुन्ट ने जर्मनी के लिपजिग विश्वविद्यालय में मनोविज्ञान की पहली प्रयोगशाला खोली थी।”¹³

वैज्ञानिक काल को मुख्यतः दो भागों में बांटा गया है उनके नाम निम्न हैं—

¹¹ सिंह, अरुण कुमार, सिंह, आशीष कुमार. (2017). *आधुनिक सामान्य मनोविज्ञान*. ग्यारहवाँ संस्करण. दिल्ली : मोतीलाल बनारसीदास. पृ. 14.

¹² सिंह, अरुण कुमार, सिंह, आशीष कुमार. (2017). *आधुनिक सामान्य मनोविज्ञान*. ग्यारहवाँ संस्करण. दिल्ली : मोतीलाल बनारसीदास. पृ. 14.

¹³ सिंह, अरुण कुमार, सिंह, आशीष कुमार. (2017). *आधुनिक सामान्य मनोविज्ञान*. ग्यारहवाँ संस्करण. दिल्ली : मोतीलाल बनारसीदास. पृ. 16

“प्रारंभिक काल तथा आधुनिक काल”¹⁴

आरंभ के प्रारंभिक काल में मनोविज्ञान के विकास कालक्रम में विभिन्न प्रकार के स्कूल स्थापित हुए। विभिन्न स्कूल संप्रदायों में विषयगत— वस्तुओं की विधि अलग—अलग प्रकार से बतायी गयी है।

अर्वाचीन काल में मनोविज्ञान का कोई भिन्न स्कूल नहीं है तथा हर—एक भिन्न संप्रदाय से संबंधित मनोविज्ञान किसी अलग प्रकार के स्कूल से संबंध नहीं रखता। वह अपने अनुसंधान एवं परीक्षण का परिणाम मूलतः किसी भी मनोवैज्ञानिक शाखा से इसका संबंध न होकर, यह स्वतंत्र रूप विकसित हो रहा है।

वुन्ट जिन्होंने पहली प्रयोगशाला की स्थापना की, “उन्होंने चेतन अनुभव को मनोविज्ञान की विषय—वस्तु माना तथा अंतर्निरीक्षण को विधि माना।”¹⁵

मनोविज्ञान के पाँच स्कूलों का वर्णन निम्नानुसार है:—

संरचनावाद

“विह्लेम् वुन्ट के शिष्य टिचेनर”¹⁶ ने चेतना तथा मन में अंतर किया।

चेतना से तात्पर्य अनुभव से संबंधित था, जो एक पल में उपस्थित होता है। जबकि मन का संबंध उन अनुभवों से है जो व्यक्ति के जन्म से संबंधित है।

“चेतना के अंतर्गत तीन तत्व आते हैं : संवेदन, प्रतिमा, भाव।”¹⁷

प्रकार्यवाद या कार्यवाद

प्रकार्यवाद के अनुसार मनोविज्ञान का संबंध मानसिक कार्य से होता है न कि चेतना के तत्वों से इसका संबंध (प्रकार्यवाद) होता है।

¹⁴ सिंह, अरुण कुमार, सिंह, आशीष कुमार. (2017). *आधुनिक सामान्य मनोविज्ञान*. ग्यारहवाँ संस्करण. दिल्ली : मोतीलाल बनारसीदास. पृ. 16

¹⁵ डॉ० रूपम . (2017). *योग मनोविज्ञान*. द्वितीय संस्करण. दिल्ली : मोतीलाल बनारसीदास. पृ. 03.

¹⁶ सिंह, अरुण कुमार, सिंह, आशीष कुमार. (2002). *सरल सामान्य मनोविज्ञान*. तृतीय संस्करण. दिल्ली : मोतीलाल बनारसीदास. पृ. 08.

¹⁷ डॉ० रूपम. (2017). *योग मनोविज्ञान*. द्वितीय संस्करण. दिल्ली : मोतीलाल बनारसीदास. पृ . 03.

व्यवहारवाद

“व्यवहारवाद की संस्थापना वाटसन द्वारा 1913 में की गयी।”¹⁸

उन्होंने उद्दीपक तथा अनुक्रिया के आधार पर व्यवहार को बतलाया है।

गेस्टाल्ट मनोविज्ञान

गेस्टाल्ट के अनुसार मनोविज्ञान का आधार मानसिक प्रक्रियाओं का संगठनात्मक स्वरूप है।

मनोविश्लेषण

मनोविश्लेषण की स्थापना फ्रायड द्वारा की गयी है। जिसमें असामान्य व्यवहार का कारण अचेतन को बताया गया है।

¹⁸ सिंह, अरुण कुमार, सिंह, आशीष कुमार. (2017). *आधुनिक सामान्य मनोविज्ञान*. ग्यारहवाँ संस्करण. दिल्ली : मोतीलाल बनारसीदास. पृ. 19.

2.3 मनोविज्ञान के विविध आयाम

मनोविज्ञान व्यवहार तथा अनुभव पर आधारित है। यह किसी न किसी रूप में एक दूसरे से पृथक नहीं है, इनका विभिन्न शाखाओं के रूप में एक दूसरे से संबंध है। मनोविज्ञान के विविध आयाम निम्नानुसार है—

सामान्य मनोविज्ञान

इसमें मुख्यतः मनुष्य की सामान्य मानसिक प्रक्रियाओं तथा व्यवहार के स्वरूप का अध्ययन किया जाता है।

असामान्य मनोविज्ञान

इसमें सामान्य दशा से भिन्न व्यवहार का अध्ययन किया जाता है।

बाल मनोविज्ञान

इसमें मुख्यतः बालक के विकास एवं व्यवहार का अध्ययन किया जाता है।

समाज मनोविज्ञान

इसमें समाज के विभिन्न वर्गों के व्यक्तियों के व्यवहार का अध्ययन किया जाता है।

अपराध मनोविज्ञान

अपराधी के व्यवहार को समझकर, उसके व्यवहार में परिवर्तन लाकर, उसे सही दिशा देना अपराध मनोविज्ञान के अंतर्गत आता है।

नैदानिक मनोविज्ञान

इसमें मानसिक रोगों की उपचारात्मक विधि शामिल होती है।

2.4 मनोविज्ञान के दृष्टिकोण

मनोविज्ञान का पाश्चात्य दृष्टिकोण

मनोविज्ञान का भारतीय दृष्टिकोण

2.4.1 मनोविज्ञान का पाश्चात्य दृष्टिकोण

पाश्चात्य मनोविज्ञान की पृष्ठभूमि:

आत्मा का विज्ञान

मनोविज्ञान अंग्रेजी के Psychology शब्द से मिलकर बना है। जिसमें psyche का मन्तव्य आत्मा से तथा logos का अर्थ अध्ययन करने से है। अतः शुरुवात में मनोविज्ञान का अध्ययन आत्मा के अध्ययन के दृष्टिकोण से समझा जाता था। ग्रीक के दार्शनिक "अरस्तु तथा प्लेटो"¹⁹ ने सबसे शुरु में मनोविज्ञान को आत्मा का विज्ञान माना था। कुछ समय पश्चात् आत्मा के इस विज्ञान को खारिज कर दिया था, क्योंकि आत्मा न तो दिखाई देती है और न ही उसे मापा तथा छुआ जा सकता है। इसलिए आत्मा के इस विज्ञान को अस्वीकार्य कर दिया गया था।

मन का विज्ञान—

कुछ समय बाद के मनोवैज्ञानिकों ने मनोविज्ञान को मन का विज्ञान माना। आत्मा की तरह ठीक मन भी अभौतिक था, क्योंकि इसको भी पूर्णतः मापा तथा छुआ नहीं जा सकता था। अतः मन के इस विज्ञान को भी अस्वीकृत कर दिया था।

मन का विभिन्न अर्थों में प्रयोग किया जाता है। हृदय, चित्त, विचार, अन्तःकरण, मनन, इत्यादि।

¹⁹ सिंह, अरुण कुमार, सिंह, आशीष कुमार. (2002). सरल सामान्य मनोविज्ञान. तृतीय संस्करण. दिल्ली : मोतीलाल बनारसीदास. पृ. 01.

मन के प्रकार

“मन के मुख्यतः दो प्रकार होते हैं।”²⁰

आकारात्मक पक्ष

गत्यात्मक पक्ष

आकारात्मक पक्ष

“फ्रायड के अनुसार मन के आकारात्मक पहलू का तात्पर्य वैसे पहलू से है जहाँ संघर्षमय परिस्थिति की गत्यात्मकता उत्पन्न होती है। उनके अनुसार व्यक्तित्व की गत्यात्मक शक्तियों इदं, अहं, पराहं (Id, Ego, Super Ego) के बीच के संघर्षों का कार्यस्थल मन का आकारात्मक पहलू ही है।

आकारात्मक पक्ष को मुख्यतः तीन श्रेणियों में विभेदित किया है।”²¹

(1) चेतन (Conscious)

(2) अर्द्धचेतन (Sub- Conscious)

(3) अचेतन (Un- Conscious)

(1) चेतन मन

चेतन मन का संबंध त्वरित ज्ञान से है। अर्थात् मन की वह दशा जिसमें उसकी चेतना वर्तमान कालिक विषयों से इतर नहीं होती है। यानि जिस समय कोई व्यक्ति काम कर रहा है, उसकी मनोदशा उस काम पर ही रहती है, इसके अलावा वह अन्य चीजों के बारे में सोचता ही नहीं है। यह प्रतिक्षण बदलती रहती है, परन्तु मनुष्य के व्यक्तित्व की दशा स्थिर रहती है। “यद्यपि यह मन का सबसे सूक्ष्म यानि छोटा भाग होता है।”²²

²⁰ डॉ० रूपम. (2017). *योग मनोविज्ञान*. द्वितीय संस्करण. दिल्ली : मोतीलाल बनारसीदास. पृ. 101.

²¹ डॉ० रूपम. (2017). *योग मनोविज्ञान*. द्वितीय संस्करण. दिल्ली : मोतीलाल बनारसीदास. पृ. 101.

²² <https://www.allamaiqbalcollege.edu.in>

(2) अर्द्धचेतन मन

अर्द्धचेतन मन, चेतन तथा अचेतन मन का मध्ययीकृत भाग है। यद्यपि यह न तो पूर्णकालिक चेतन है और न ही अचेतन। “यह मन का वह हिस्सा है जो थोड़े से भी जोर देने पर याद आ जाता है। इसे अवचेतन भी कहा जाता है।”²³ “यह चेतन तथा अवचेतन (अर्द्धचेतन) के मध्य ब्रिज का काम करती है।”²⁴

(3) अचेतन मन

यह मन का सबसे महत् तथा परिष्कृत स्वरूप है। “व्यक्ति का अनुभव न तो चेतन स्वरूप में और न ही अर्द्धचेतन अथवा अवचेतन में होता है। यह अनुभव मनुष्य के अचेतन मन में होता है। जिसे व्यक्ति चाह कर भी याद नहीं कर पाता है। इस तरह के विचार काम—वासनाओं तथा घृणित विचारों से युक्त होते हैं।”²⁵ “इस स्तर पर मनुष्य की दमित इच्छाओं का नाश नहीं होता। बल्कि यह मनुष्य के चेतन स्वरूप में आने का पूर्णतः प्रयास करती है।”²⁶

गत्यात्मक पक्ष

“मन के गत्यात्मक पक्ष से तात्पर्य उन साधनों से होता है जिसके द्वारा मूल प्रवृत्तियों से उत्पन्न मानसिक संघर्षों का समाधान होता है। मन के गत्यात्मक पहलू से तात्पर्य मूल प्रकृति से हैं, जो दो प्रकार की होती हैं।”²⁷

जीवन मूल प्रवृत्ति।

मृत्यु मूल प्रवृत्ति।

जीवन मूल प्रवृत्ति

जीवन मूल प्रवृत्तियों से तात्पर्य जीवन के रचनात्मक पहलू से हैं, जिसमें सभी तरह के सकारात्मक पहलू आते हैं।

²³ डॉ० रूपम. (2017). *योग मनोविज्ञान*. द्वितीय संस्करण. दिल्ली : मोतीलाल बनारसीदास. पृ. 102.

²⁴ <https://www.allamaiqbalcollege.edu.in>

²⁵ डॉ० रूपम. (2017). *योग मनोविज्ञान*. द्वितीय संस्करण. दिल्ली : मोतीलाल बनारसीदास. पृ. 103.

²⁶ <https://www.allamaiqbalcollege.edu.in>

²⁷ डॉ० रूपम. (2017). *योग मनोविज्ञान*. द्वितीय संस्करण. दिल्ली : मोतीलाल बनारसीदास. पृ. 106.

उदाहरणार्थ— कविता लिखना, गाना गाना आदि।

मृत्यु मूल प्रवृत्ति

मृत्यु मूल प्रवृत्ति से तात्पर्य विध्वंशकारी प्रकृति से है। जिसमें व्यक्ति के द्वारा अन्य किसी व्यक्ति को पीड़ित किया जाता है। सामान्य दशा में इन दोनों प्रवृत्तियों के मध्य सामंजस्य बना रहता है, किन्तु जब इन प्रवृत्तियों के मध्य सामंजस्य बिगड़ता है तो व्यक्ति में असंतुलन आ जाता है।

“फ्राइड ने गत्यात्मक पहलू के आधार पर इन्हे तीन श्रेणियों में वर्गीकृत किया है।”²⁸

(1) उपाहं (Id)

(2) अहं (Ego)

(3) पराहं (Super-Ego)

(1) उपाहं (Id)

उपाहं से तात्पर्य बच्चे की प्रारंभिक अवस्था से है। यह बच्चों की त्वरित इच्छाओं की पूर्ति से अभिव्यक्त है। इसका अहं (Ego) तथा पराहं (Super-Ego) से कोई सरोकार नहीं है। बच्चों में प्यार तथा द्वेष दोनों ही इच्छाएँ जन्म लेती है। बच्चें अपनी इच्छाओं की पूर्ति त्वरित चाहते हैं। उन्हें इस बात से कोई मतलब नहीं होता कि यह पूर्ति किस प्रकार से हो रही है, उन्हें बस अपनी इच्छाओं से मतलब होता है।

(3) अहं (Ego)

यह बच्चे की आरंभिक अवस्था के बाद की अवस्था है। तथा इसका विकास बच्चे के विकास के साथ-साथ होता है। “वह अपने अन्दर स्व के ज्ञान को पहचानने लगता है, कि वह वस्तु मेरी है, यह वस्तु मेरी नहीं है। वह समझने लगता है, कि किन इच्छाओं की पूर्ति संभव है और संभव नहीं है।”²⁹

²⁸ डॉ० रूपम. (2017). *योग मनोविज्ञान* द्वितीय संस्करण. दिल्ली : मोतीलाल बनारसीदास. पृ. 106.

²⁹ samjaryshiksha.com

अहं तीनों स्तरों से संबन्धित है। अहं को यह ध्यान रखना पड़ता है, कि वह उपाहं (Ego) तथा पराहं (Super-Ego) दोनों को संतुष्ट करे। इस तरह अहं को कई तरह की प्रतिरक्षा प्रणालियों का सहारा लेना पड़ता है। जैसे किसी व्यक्ति के अंदर कामुक भावना जाग्रत हुई किसी ऐसे विपरीत व्यक्ति के प्रति जो उसके रिश्ते में कुछ लगता था तो वह व्यक्ति उस रिश्ते की भावना का मान रखते हुए उन गलत इच्छाओं का विस्मरण कर देता है। जो दमन के अंतर्गत आती है। इस तरह सुरक्षा प्रणालियों का अहं सहारा लेता है। अहं को सही समय में किस प्रकार की सुरक्षा प्रणालियों का सहारा लेना है, ये उसे अच्छे से पता है। अतः ऐसा व्यक्ति किसी भी प्रकार के वातावरण में अपने आप को समायोजित कर लेता है।

(3) पराहं (Super-Ego)

यह व्यक्ति के विकास का अंतिम चरण है। “पराहं को व्यक्तित्व के विकास का नैतिक बिन्दु माना है।”³⁰ यह व्यक्ति में गलत तथा सही का भाव निरूपित करता है। इसका संबंध समाज के द्वारा निरूपित किये गये यथार्थवादी विचारों से है।

चेतना का विज्ञान

विलियम वुण्ट तथा उनके शिष्य टिचेनर चेतना के विज्ञान के समर्थक थे। चेतना अन्तर्निरीक्षण पर आधारित होता है। “चेतना मुख्यतः तीन बातों पर निर्भर करती है।”³¹

(1) संवेदन (sensation)

(2) प्रतिमा (image)

(3) भाव (feeling)

इसमें व्यक्ति के खुद के अपने विचार होते हैं। जिन्हे वैज्ञानिक उपकरणों से मापा नहीं जा सकता है। अतः कुछ समय पश्चात् चेतना के इस मनोविज्ञान को भी खारिज कर दिया गया था।

³⁰ डॉ० रूपम. (2017). *योग मनोविज्ञान*. द्वितीय संस्करण. दिल्ली : मोतीलाल बनारसीदास. पृ. 108-109.

³¹ डॉ० रूपम. (2017). *योग मनोविज्ञान*. द्वितीय संस्करण. दिल्ली : मोतीलाल बनारसीदास. पृ. 06.

व्यवहार का मनोविज्ञान

“मनोविज्ञान में व्यवहार का अध्ययन जे. बी. वाटसन द्वारा किया गया।”³² व्यवहार प्रेक्षणीय अथवा दर्शनीय योग्य है, व्यवहार के आधार पर मनुष्य की भाव-भंगिमा, डरा हुआ है अथवा क्रोधित है, व्यक्ति के सीखने की प्रक्रिया कैसी है तथा मन में उठ रहे विचारों के अनुरूप व्यक्ति का अध्ययन किया जाता है।

“मनुष्य के व्यवहार को दो रूपों में वर्गीकृत किया गया है।”³³

स्पष्ट व्यवहार

अस्पष्ट व्यवहार

स्पष्ट व्यवहार

स्पष्ट व्यवहार से तात्पर्य ऐसे व्यवहार से है, जिसका दूसरों के द्वारा दृष्टिगोचर किया जाता है।

उदाहरणार्थ— “सीखना, टहलना, दौड़ना, हँसना, रोना आदि।”³⁴

अस्पष्ट व्यवहार

ऐसा व्यवहार जो दूसरे व्यक्ति के द्वारा दृष्टिगोचर करना संभव नहीं है। अस्पष्ट व्यवहार की श्रेणी में आता है।

उदाहरणार्थ— मनन करना, परिकल्पना करना, स्मरित करना आदि।

व्यवहार के आधार पर मनोविज्ञान की विधियाँ

“व्यवहार के आधार पर मनोविज्ञान की तीन विधियाँ हैं।”³⁵

(1) अन्तर्निरीक्षण विधि (Introspection Method)

³² सिंह, अरुण कुमार, सिंह, आशीष कुमार. (2002). *सरल सामान्य मनोविज्ञान*. तृतीय संस्करण. दिल्ली : मोतीलाल बनारसीदास. पृ. 02.

³³ सिंह, अरुण कुमार, सिंह, आशीष कुमार. (2002). *सरल सामान्य मनोविज्ञान*. तृतीय संस्करण. दिल्ली : मोतीलाल बनारसीदास. पृ. 04.

³⁴ सिंह, अरुण कुमार, सिंह, आशीष कुमार. (2002). *सरल सामान्य मनोविज्ञान*. तृतीय संस्करण. दिल्ली : मोतीलाल बनारसीदास. पृ. 04.

³⁵ सिंह, अरुण कुमार, सिंह, आशीष कुमार. (2002). *सरल सामान्य मनोविज्ञान*. तृतीय संस्करण. दिल्ली : मोतीलाल बनारसीदास. पृ. 08.

(2) बाह्य निरीक्षण विधि (Objective Observation Method)

(3) प्रयोगात्मक विधि (Experimental Method)

(1) अन्तर्निरीक्षण विधि

अन्तर्निरीक्षण से तात्पर्य स्वयं के अवलोकन से है। इसके जनक "विलियम वुण्ट तथा उनके शिष्य टिचेनर"³⁶ थे। अन्तर्निरीक्षण विधि में चेतना के धरातल पर व्यक्ति के भीतर क्या चल रहा है, इसका वर्णन व्यवहार के अन्तर्गत किया जाता है।

उदाहरणार्थ—जैसे व्यक्ति क्रोधित है, तब उसकी स्थिति अप्रसन्नता की रहेगी, वह स्वयं अवलोकन करके यह बता सकता है, कि वह दुःखी है। किसी भी प्रकार की ऐसी संवेदना जो उसके प्रसन्नता का कारण बन सके, वह अभिव्यक्त नहीं हो पाती है। क्योंकि उस समय उसके विचारों में क्रोध ही अभिनिहीत है।

अन्तर्निरीक्षण के विशिष्ट गुण

अनुभव व्यक्ति के स्वयं के होते हैं, इसका किसी भी व्यक्ति से कोई सरोकार संभव ही नहीं है। अन्य व्यक्ति के द्वारा इन स्वयं आधारित अनुभूतियों का अध्ययन संभव ही नहीं है। यह व्यक्ति विशेष तक ही सीमित रहती है।

अन्तर्निरीक्षण विधि के अवगुण

इस विधि का सबसे पहला अवगुण यह है, कि व्यक्ति स्वयं ही अपने विचारों का अध्ययन कर सकता है, कोई अन्य व्यक्ति के द्वारा इसका निरीक्षण संभव नहीं है। अतः स्वयं के विचारों की आधारशिला पर अन्तर्निरीक्षण के आधार पर वैज्ञानिकता के अध्ययन का परिसीमांकन संभव ही नहीं है।

किन्तु यदि एक उपर्युक्त घटना की स्थिति में अनेक बार एक ही चीज का पर्यवेक्षण (निरीक्षण) बार-बार किया जाए, तो वह स्थिति का वैज्ञानिक आधार हो सकती है।

³⁶ सिंह, अरुण कुमार, सिंह, आशीष कुमार. (2002). *सरल सामान्य मनोविज्ञान*. तृतीय संस्करण. दिल्ली : मोतीलाल बनारसीदास. पृ. 08.

उदाहरणार्थ—“यदि कोई व्यक्ति प्रेम की दशा में अन्तर्निरीक्षण की अवस्था में हर्ष, उत्सुकता, उल्लास आदि संवेगों से युक्त है, तो यह परिणाम निकाला जा सकता है, कि प्रत्येक व्यक्ति प्रेम में हर्ष, उत्सुकता आदि का अनुभव करता है। अतः यह वैज्ञानिक नियम के अन्तर्गत आता है।”³⁷

अन्तर्निरीक्षण का दूसरा सबसे बड़ा दोष यह है कि मनुष्य के मन के विचारों की क्रियाएँ बहुत ज्यादा वेगवान होती हैं, तथा उन वेगवान विचारों का निरीक्षण संभव ही नहीं है। जब व्यक्ति उन विचारों का अवलोकन करता है, तो वे विचार गायब हो जाते हैं और उनके स्थान पर दूसरे नये विचारों की क्रियाएँ चलती हैं। जिन्हें अन्तर्निरीक्षण न कहकर सिंहावलोकन या “अनुनिरीक्षण (retrospection)”³⁸ कहा जाता है।

“इसमें अनुभवकर्ता और निरीक्षक का केन्द्र बिन्दु एक ही है।”³⁹ तथा ये परस्पर आपस में विरोधाभासी हैं।

“इसका प्रयोग प्रायः सभी वर्गों की पहुँच से दूर है। पशु तथा बच्चे इस विधि को नहीं अपना सकते।”⁴⁰

(2) बाह्य निरीक्षण विधि

बाह्य निरीक्षण व्यक्ति के शारीरिक क्रियाओं का मूल परिचायक है। जो व्यक्ति के शारीरिक क्रियाओं के आधार पर यह बताता है, कि शरीर तथा मन का आपस में क्या संबंध है। मन तथा शरीर का आपस में व्याप्ति साहचर्य संबंध है। जो क्रियाएँ शरीर में चलती हैं, उसकी अभिव्यक्ति मन करता है तथा जो क्रियाएँ मन में होती हैं, उसकी अभिव्यक्ति शरीर के द्वारा होती है।

³⁷ पाण्डेय, रामप्रसाद. (2012). *सामान्य मनोविज्ञान*, प्रथम संस्करण. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन. पृ. 36,37.

³⁸ पाण्डेय, रामप्रसाद. (2012). *सामान्य मनोविज्ञान*, प्रथम संस्करण. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन. पृ. 37.

³⁹ पाण्डेय, रामप्रसाद. (2012). *सामान्य मनोविज्ञान*, प्रथम संस्करण. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन. पृ. 37.

⁴⁰ पाण्डेय, रामप्रसाद. (2012). *सामान्य मनोविज्ञान*, प्रथम संस्करण. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन. पृ. 37.

“शारीरिक क्रियाओं का आधार मुख्यतः दो प्रकार का होता है।”⁴¹

स्थूल शारीरिक क्रियायें

सूक्ष्म शारीरिक क्रियायें

स्थूल शारीरिक क्रियायें

काय के बाहर संपादित होने वाली क्रियायें स्थूल शारीरिक क्रियायें कहलाती हैं।

सूक्ष्म शारीरिक क्रियायें

काय अथवा शरीर के अन्दर संपादित होने वाली प्रक्रियाएँ सूक्ष्म शारीरिक क्रियायें कहलाती हैं।

उदाहरणार्थ:— “श्वसन दर, हृदय गति, रक्त प्रवाह आदि।”⁴²

बाह्य निरीक्षण के विशिष्ट गुण

बाह्य निरीक्षण द्वारा व्यक्ति के बाह्य चलने वाली गतिविधियों का अध्ययन कई विशेषज्ञों द्वारा संभव है। यह अंतर्निरीक्षण से सुगम है।

इसका मापन वैज्ञानिक उपकरणों द्वारा संभव है।

बाह्य निरीक्षण सभी वर्ग के लोगों के लिए संभव है।

असामान्य व्यक्तियों के व्यवहार का परिमाणन बाह्य निरीक्षण द्वारा संभव है।

पशु वर्ग में यह विधि सर्वोत्तम है।

बाह्य निरीक्षण समष्टि समुदाय के व्यवहार में होने वाले परिवर्तनों का अध्ययन अथवा उनके द्वारा की गयी गतिविधियों के अध्ययन द्वारा संभव हैं।

⁴¹ पाण्डेय, रामप्रसाद. (2012). सामान्य मनोविज्ञान, प्रथम संस्करण. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन. पृ. 38.

⁴² पाण्डेय, रामप्रसाद. (2012). सामान्य मनोविज्ञान, प्रथम संस्करण. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन. पृ. 38.

बाह्य निरीक्षण के अवगुण

बाह्य निरीक्षण में व्यक्ति अपने पूर्वानुमानों के आधार पर उस व्यक्ति की संकल्पना को अपने सांचे में ढाल लेता है। यदि उस व्यक्ति की धारणा पूर्वानुमानित धारणा के आधार पर व्यक्ति चाहे गलत ही क्यों न हो यदि वह अच्छा कार्य संपादित करेगा तो भी वह उसे गलत ही समझेगा, ठीक इसी तरह कोई व्यक्ति कितना ही गलत कार्य करे, यदि उस व्यक्ति की पूर्वानुमानित धारणा उसके प्रति सही दृष्टिकोण रखती है, तो वह उसे सही ही समझेगा। इसके लिए यह आवश्यक है, कि वह व्यक्ति के पूर्वानुमान के आधार पर गलत तर्क न करे तथा निष्पक्ष रूप से उसके व्यवहार के आधार पर निर्णय ले।

शारीरिक अथवा कायगत प्रक्रियाओं के आधार पर मानसिक प्रक्रियाओं का अध्ययन करना थोड़ा जटिल है। इसका मुख्य कारण यह है, की कायगत गतिविधि की एक प्रक्रिया अनेक मानसिक गतिविधियों को जन्म देती है।

उदाहरणार्थ— “बच्चे क्रोध की स्थिति में साँस रोक लेते हैं। और शरीर को कड़ा कर लेते हैं। बच्चे ऐसा भय की दशा में समान पूर्वक व्यवहार करते हैं। इन दोनों स्थितियों में प्राप्त परीक्षण गलत साबित होते हैं। बाह्य गतिविधि की इस समस्या को दूर करने के लिए विशेषज्ञ यदि दोनों स्थितियों में परीक्षण कर रहा है, तो विशेषज्ञ उनके वर्तमानकालिक परिस्थिति से पूर्णरूपेण अवगत हो जाते हैं।”⁴³

(3) प्रयोगात्मक विधि

व्यवहार का मापन करने के लिए विभिन्न उपकरणों व तकनीकों का प्रयोग इस प्रयोगात्मक विधि में किया जाता है।

⁴³ पाण्डेय, रामप्रसाद. (2012). *सामान्य मनोविज्ञान*, प्रथम संस्करण. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन. पृ. 40.

पूर्व मनोवैज्ञानिक काल में असामान्य व्यवहार की अवधारणा

पहले के समय में असामान्य व्यवहार का कारण भूत-प्रेतों से तथा ईश्वर की कृपा दृष्टि का हट जाना समझा जाता था। फिर धीरे-धीरे वैज्ञानिक विचार धारा का जन्म हुआ और यह बताया गया कि असामान्य व्यवहार का मुख्य कारण मस्तिष्क की विकृति का होना है। इस वैज्ञानिक विचारधारा की उत्पत्ति का श्रेय “हिप्पोक्रेट्स को माना जाता था।”⁴⁴ इस नई सोच के जन्म के कारण कई मनोवैज्ञानिक इस विचार के साथ आगे काम करते रहे। “उत्तरग्रीक एवं रोमवासियों ने हिप्पोक्रेट्स की विचारधारा में अपना योगदान दिया। मिश्र में कई गिरिजाघरों तथा पूजा स्थल जो आस्था के केन्द्र थे, मनोरोगियों के लिए बनबाये गये थे।”⁴⁵ मिश्र में उनके मनोरंजन के लिए कई प्रकार की चीजें उपलब्ध थी।

उदाहरणार्थ— गाना, बगीचों में घूमना, कम भोजन रोगियों को देना जिससे वो अपने आप को स्वस्थ तथा रोग मुक्त अनुभव कर सकें। धीरे-धीरे मनोरोगियों के उपचार के लिए अस्पताल खोले जाने लगे और उन्हें ठीक करने के लिए उचित वातावरण उपलब्ध कराया जाने लगा। जिसके फलस्वरूप वो जल्दी ठीक हो सकें।

असामान्य मनोविज्ञान का पहले से अब तक का स्वरूप

20 वीं शताब्दी के पहले मनोरोग से पीड़ित व्यक्तियों के लिए मानसिक अस्पताल उनके ठीक होने का एकमात्र सहारा समझा जाता था, पर इन अस्पतालों का वास्तविक स्वरूप कुछ अलग ही था। अस्पतालों में कई मनोरोगियों को एक कमरे में बन्द कर दिया जाता था। वहां पर न तो शौचालय था और न ही मनोरोगियों के लिए प्रकाश की एक किरण तक उपलब्ध हो पाती थी। जिसके फलस्वरूप ठीक होने की बजाय उनकी स्थिति और बिगड़ जाती थी। कई लोगों की तो मृत्यु तक हो गई थी। “आजकल अमेरिका में मनोरोगियों की इन अस्पतालों की जगह सामुदायिक मानसिक स्वास्थ्य केन्द्र ने ली है।”⁴⁶ अमेरिका की इस स्वास्थ्य सेवा को देखते हुए कई देशों में इस प्रकार के स्वास्थ्य केन्द्र की स्थापना हुई। इन केन्द्रों का मुख्य उद्देश्य रोगियों को जल्दी सेवा उपलब्ध कराना है,

⁴⁴ सिंह, अरुण कुमार. (2016). *आधुनिक असामान्य मनोविज्ञान*. सप्तम संस्करण. दिल्ली : मोतीलाल बनारसीदास. पृ. 02.

⁴⁵ सिंह, अरुण कुमार. (2016). *आधुनिक असामान्य मनोविज्ञान*. सप्तम संस्करण. दिल्ली : मोतीलाल बनारसीदास. पृ. 03, 04.

⁴⁶ सिंह, अरुण कुमार. (2016). *आधुनिक असामान्य मनोविज्ञान*. सप्तम संस्करण. दिल्ली : मोतीलाल बनारसीदास. पृ. 11.

जिससे वो जल्दी से जल्दी ठीक हो सकें तथा "रोगियों के लिए दूरभाष की भी व्यवस्था की गई। जिसके परिणामतः वे चिकित्सकों के द्वारा उपचार प्राप्त कर सकें।"⁴⁷

⁴⁷ सिंह, अरुण कुमार. (2016). *आधुनिक असामान्य मनोविज्ञान*. सप्तम संस्करण. दिल्ली : मोतीलाल बनारसीदास. पृ. 11.

2.4.2 मनोविज्ञान का भारतीय दृष्टिकोण

भारतीय मनोविज्ञान की पृष्ठभूमि

भारतीय मनोविज्ञान का इतिहास बहुत पुराना है। भारतीय मनोविज्ञान की उत्पत्ति दर्शन की शाखा से हुई है। इसका अपना ही एक स्वतंत्र अस्तित्व है। परन्तु भारतीय मनोविज्ञान का अध्ययन पाश्चात्य मनोविज्ञान की तुलना में बहुत ही कम हुआ है। हर देश की मनोवैज्ञानिक पद्धति उस देश के धर्म और सम्प्रदाय से काफी प्रभावित होती है, ठीक इसी तरह भारतीय मनोविज्ञान का संबंध भारत के हिन्दु धर्म और आध्यात्मिकता से जुड़ा है। जो कि कई रहस्यमयी परिघटनाओं को अपने में छुपाए हुए हैं। भारत में इतना सुन्दर अस्तित्व होते हुए भी पाश्चात्य मनोविज्ञान, भारतीय मनोविज्ञान की इस आधारशिला को कमतर ही आंकता है, क्योंकि पाश्चात्य मनोविज्ञान की आधारशिला वैज्ञानिक तौर पर प्रमाणित है, जबकि भारतीय मनोविज्ञान की आधारशिला अनुभव व अध्यात्म पर आधारित है। इसमें वैज्ञानिक प्रमाणिकता का आधार पाश्चात्यकाल से शुरू ही नहीं हुआ है, किन्तु पाश्चात्य के मनोदार्शनिक अपने अनुभव के स्तर पर इस भारतीय मनोविज्ञान की परम्परा को समझने का प्रयास कर रहे हैं और धीरे-धीरे इस पर अनुसंधान किया जा रहा है। भारतीय मनोविज्ञान की परम्परा की शुरुआत प्राचीन काल में ऋषिमुनियों से शुरू हुई थी। इन ऋषि, मुनियों का आधार तप, अध्यात्म, ध्यान व योग का समन्वयात्मक केन्द्र बिन्दु है। ये किसी भी आने वाली परेशानियों का निवारण बहुत ही सरल व सुगम तरीके से निकाल लेते थे और इस रहस्यात्मक विद्या का उपयोग लोगों के जनकल्याण के लिए किया जाता था। ऋषिगणों के चेहरे पर एक तेजस्विता और ओज झलकती थी, जो यह वर्णन करता है, कि वे संसार के सुख-दुःख, सर्दी-गर्मी आदि से प्रभावित नहीं होते तथा इन सबका कारण प्रत्याहार, ध्यान तथा योग है। ध्यान व योग के सहारे कोई भी व्यक्ति देवत्व व दिव्यता के स्वरूप को प्राप्त कर सकता है। ये दिव्यता एक पारस पत्थर के समान होती है। जो कि उसके संपर्क में आने वाले किसी भी व्यक्ति के दुष्टता के मार्ग को अवरुद्ध कर सन्मार्ग की ओर चलने के लिए आकर्षित करती है। ऐसे दिव्य व्यक्ति का संग जब प्रकृति व हिंसक पशुओं पर पड़ता है, तो पशु अपनी हिंसात्मक प्रवृत्ति को छोड़कर शांत एवं सौम्य स्वभाव की ओर आकर्षित होकर मनोरम प्रकृति के सानिध्य में उन उच्च कोटि वाले

व्यक्तियों के साथ विचरण करते हैं और ये पशु किसी भी प्रकार का कष्ट अथवा हानि मनुष्य को नहीं पहुँचाते हैं। पाश्चात्य मनोविज्ञान में व्यक्तियों के गुणों को दो प्रारूपों में वर्गीकृत किया है।

(1) सामान्यीकृत

(2) असामान्यीकृत

जबकि “भारतीय मनोविज्ञान में व्यक्ति के धार्मिक पहलू तथा रहस्यमयी अनुभव तथा आत्मसाक्षात्कार को अति सामान्य वर्ग में वर्गीकृत किया है।”⁴⁸ जबकि पाश्चात्य के मनोदार्शनिक इसे असामान्यीकृत के अंतर्गत मानते हैं, जो कि अत्यन्त खेद का विषय है। क्योंकि भारतीय मनोविज्ञान योगियों के आत्मदर्शन तथा रहस्यात्मक अनुभवों को विघटित नहीं करता तथा पाश्चात्य मनोविज्ञान के दार्शनिक ऋषियों तथा योगियों के इस स्वरूप का खंडन करते हैं और इन्हें अव्यवहारिक तथा असामान्य की श्रेणी में रखते हैं। भारतीय मनोविज्ञान में पाश्चात्य मनोविज्ञान की तरह ही मानसिक पहलूओं पर जोर दिया गया है परन्तु दोनों के मन्तव्य में अंतर है। भारतीय दर्शन व्यक्ति के मानसिक विघटन का स्वरूप “आनंद की विकृति”⁴⁹ को मानते हैं। जबकि पाश्चात्य मनोविज्ञान आनंद के इस विघटन के स्वरूप का संबंध मानसिक विकार को नहीं मानते वो इसका कुछ और ही कारण मानते हैं और मनुष्य का यह मूल कारण अपनी ही मूलात्मक प्रवृत्ति का परिणाम है।

भारतीय मनोविज्ञान की आधारशिला

भारतीय मनोविज्ञान का प्राचीन आधार गवेषणा पर आधारित नहीं था, बल्कि यह ध्यान व समाधि से प्राप्त अनुभूतियों पर आधारित था। जिसके परिणामस्वरूप आने वाली किसी भी समस्या का निराकरण विवेक बुद्धि के स्तर पर जाकर आसानी से सुलझाया जाता था। प्रकृति की समष्टि, व्यष्टि की आधारभूत प्रणाली तथा प्रकृति, पुरुष के पृथक्त्व का निराकरण इसी अनुभव तथा अनुभूतियों की देन है। जिसकी गवेषणा आज के वैज्ञानिकों द्वारा पुरातन में प्राप्त अनुभवों के द्वारा की जा रही है, जिसके प्रमाण आज के वैज्ञानिक

⁴⁸ शर्मा, रामनाथ. , शर्मा, रचना. (2005). *भारतीय मनोविज्ञान*. नई दिल्ली : एटलान्टिक पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स. पृ. 06.

⁴⁹ शर्मा, रामनाथ. , शर्मा, रचना. (2005). *भारतीय मनोविज्ञान*. नई दिल्ली : एटलान्टिक पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स. पृ. 13.

शास्त्री विभिन्न उपकरणों के माध्यम से कर रहे हैं। प्राचीन समय में आभामण्डल की अपनी ही विशेषता थी, आभामण्डल विचारों तथा भावनाओं का एक प्रतीक है और इन्हीं भावनाओं तथा विचारों के माध्यम से व्यक्तियों तथा पशु-पक्षियों में अलग-अलग तरह का सांकेतिक आभामण्डल या ओरे का निर्माण होता था और आज की आधुनिक पद्धति में ओरे का मापन वैज्ञानिक तरीके से किया जा रहा है, और "इसका सर्वप्रथम वैज्ञानिक अध्ययन "लन्दन के सेण्ट सेमस अस्पताल के चिकित्सक विशेषज्ञ डॉ. वाल्टर" ने किया था।"⁵⁰ उन्होंने आभामण्डल को मापने के लिए एक विशेष प्रकार के रंगीन कांच का प्रयोग किया, जिसमें शरीर के विभिन्न अंगवयवों का परीक्षण किया, तो उन्हें एक विशेष प्रकार की ऊर्जा का स्रोत मिला, जिसे एक ओरे के नाम से संज्ञायित किया गया। इस तरह ऐसी कई विधाओं का जन्म प्राचीन समय में पहले ही हो चुका था, जिसका अन्वेषण आज की वैज्ञानिक पद्धति में किया जा रहा है। भारत के प्राचीन ग्रंथ भगवद्गीता का भारतीय मनोविज्ञान में एक अलग ही अस्तित्व है। व्यक्तित्व के एकीकरण के लिए इसकी तुलना स्थितप्रज्ञ के रूप में की गई है। व्यक्तित्व एकीकरण का अभिप्राय यथार्थ व अयथार्थ ज्ञान से था, जिसमें स्थितप्रज्ञ व्यक्ति सही व गलत को जानते हुए भी उसमें लिप्त नहीं होता अर्थात् सही व गलत ज्ञान का आत्मभाव रखते हुए उसमें क्रमिक रूप से अलिप्त रहता है। गीता में कर्म की भावना का मनोवैज्ञानिक विवेचन भी किया है जिसमें निष्काम कर्म की प्रधानता का मूलतः संकलन मिलता है तथा पाश्चात्य में इस संकलन का पूर्णतः अभाव है। अधिकतर व्यक्ति कर्म के कर्तापन के भाव को प्रेरणा का आधार मानते हैं, जिसके फलस्वरूप व्यक्ति द्वारा किये गये सुकृत एवं दुष्कृत कर्मों के आधार पर पुण्य एवं अपुण्य रूपी कर्मों का जन्म होता है। निष्काम कर्म का आधार देवीय प्रेरणा से अभिप्रेरित है, जिसमें किसी भी प्रकार की इच्छाओं का अभाव होता है। इस निष्काम कर्म से अभिप्रेरित व्यक्ति पूर्णतः शांत एवं निश्छल स्वभाव का होता है। यदि मनुष्य की प्रवृत्ति आक्रामक स्वभाव की है तो ऐसा व्यक्ति अपनी जीवनशैली को संयमित कर तथा अच्छी संगत का रास्ता अपनाकर इन दुर्गुणों से बच सकता है। स्वभावतया मनुष्य का आचरण तथा व्यवहार उसके दर्पण होता है। मनुष्य का अच्छा आचरण तथा व्यवहार उसके सात्विक गुणों की प्रधानता को निर्देशित करता है।

⁵⁰ अखण्ड ज्योति : Jan 1989

मनुष्यों में मुख्यतः तीन गुण होते हैं (सत्त्व, रजस, तमस) तीनों की अपनी-अपनी प्रधानता है। सत्त्वशील व्यक्ति का स्वभाव शांत तथा स्थैर्यता का प्रतीक है, इस प्रकार के व्यक्ति सात्विक आहार जैसे—मसालों से रहित सादा भोजन करते हैं। लहसुन—प्याज का प्रयोग इस भोजन में वर्जित माना गया है, दूध तथा घी का प्रयोग सात्विकता से परिपूर्ण व्यक्ति के लिए शक्तिवर्धक तथा उपयोगी माना जाता है। ठीक इसी तरह रजस से परिपूर्ण व्यक्ति का भोजन दाहकारक, मिर्च—मसालों से युक्त होता है। इस प्रकार के व्यक्ति का स्वभाव हिंसात्मक, क्रोधी, लोभी प्रवृत्ति का होता है तथा तमस स्वभाव के व्यक्तियों का भोजन तिक्त, अतिउष्ण, दाहकारक तथा वासी होता है। इस प्रकार के व्यक्तियों का स्वभाव “जड़ता, आलसी, आसक्ति, अभिमानी तथा विषय वासनाओं से युक्त होता है।⁵¹” व्यक्तियों में व्याप्त इन तीनों प्रकार के गुणों का निर्धारण भारतीय परम्परा में अतिपुरातनकाल से हो गया था।

भारतीय मनोविज्ञान के संदर्भ में मन और शरीर का पारस्परिक संबंध

आयुर्वेद तथा पौराणिक (महाभारत) ग्रंथों के मन्तव्यों के अनुसार शरीर तथा मन एक-दूसरे से आत्मांतिक संबंध है। मन प्रकृति के तीन गुणों सत्त्व, रजस तथा तमस की स्थिति का प्रारूप है, तथा शरीर वात, पित्त तथा कफ का द्योतक है। जब मनस में रजस तथा तमस की विकलता उत्पन्न होती है, तो इस विकलता का असर हमारे शरीर की तीनों अवस्थाओं (वात, पित्त, कफ) की साम्यावस्था पर पड़ता है। जिसके परिणामस्वरूप शरीर कई प्रकार के रोगों का द्योतक बन जाता है। इसी प्रकार जब शरीर में क्षोभ उत्पन्न होता है तो हमारे शरीर में बहने वाली प्राण ऊर्जा में विकलता उत्पन्न होती है, जिसके परिणामतः मनस में इस क्षोभ अवस्था के कारण सत्त्व, रजस तथा तमस में विकृति उत्पन्न होती है। जिसके तहत रजस एवं तमस रूपी मलों की नकारात्मक ऊर्जा का असर हमारे मन पर पड़ता है, जिससे उन्माद, सीजोफ्रेनिया जैसे विकार हमारे मन और मस्तिष्क में उत्पन्न होते हैं। यद्यपि इनसे मुक्ति के लिए व्यक्ति में त्याग, क्षमा, दया, सत्यवादिता का होना अतिआवश्यक है, तथा इनसे प्राप्त होने वाली सकारात्मक ऊर्जा हर बड़ी से बड़ी बीमारियों

⁵¹ शर्मा, रामनाथ. शर्मा, रचना. (2005). *भारतीय मनोविज्ञान*. नई दिल्ली : एटलान्टिक पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स. पृ. 38.

तथा क्षोभ को अत्यन्त तीव्रता से भर देती है तथा ये सकारात्मक ऊर्जा मनुष्य के स्वभाव में शीतलता तथा शांति का विसरण फैलाते हैं।

बाह्य जगत से अन्तः जगत की यात्रा का केन्द्र बिन्दु

भारतीय परम्परा में आध्यात्मिकता के स्तर को सर्वश्रेष्ठ माना गया है, अध्यात्म हमारे अंतर्स का केन्द्र बिन्दु है। जिसे अंतरात्मा का आधार माना जाता है। व्यक्ति किसी बड़ी से बड़ी उलझन में क्यों न फँसा हो वह अंतर्स के सहारे अपने लिए किनारा ढूँढ ही लेता है। यद्यपि समग्रता का यह केन्द्र बहुत ही कम मनुष्यों में पाया जाता है, क्योंकि आज के आधुनिक संघर्षवादी युग में हमारे अंतर्स के आवरण को बाह्य संसाधनों के भौतिकता ने ढक लिया है। जिसके कारण व्यक्ति के अंतर्स की आवाज दब सी गई है। भारतीय परम्परा में अंतर्स की शिखर यात्रा का उल्लेख मिलता है। जबकि पश्चिमी देशों की आधुनिकता में यह अंतर्स के केन्द्र बिन्दु का जिक्र है ही नहीं। वो हर प्रक्रिया को वैज्ञानिक मापन की दृष्टि से ही देखते हैं। जब मनुष्य भौतिकवादी आधुनिकता से थक जाता है, तब वह ईश्वर की शरणागति को अपनाकर अपने मूलस्वरूप को पहचानकर जनकल्याण की ओर लग जाता है, और उसके लिए वो अपना सर्वस्व न्यौछावर कर देता है तथा ऐसा व्यक्ति परम सत्य की खोज में लगा रहता है। ऐसे लोगों को विरले की संज्ञा दी जाती है। इन विरले व्यक्तियों का मन जल के साफ पानी की तरह निर्मल होता है।

उदाहरणार्थ:- कीचड़ के पानी में खिला कमल उस कीचड़ से निर्लिप्त रहता है, ठीक उसी तरह चरित्रवान व्यक्तियों का मन भी कमल की तरह बेदाग रहता है।

2.5 भारतीय मनोविज्ञान एवं योग

भारतीय मनोविज्ञान में योग मनोविज्ञान एक पर्यायवाची है।

“सामान्य मनोविज्ञान तथा योग मनोविज्ञान दोनों का ही उद्देश्य व्यक्तित्व के विकास से ही है।”⁵²

सामान्य व्यक्ति भौतिक संसाधनों के साधनों से अपने अन्दर की शांति को ढूँढ़ता है, जबकि उसे यह नहीं पता कि यह शांति तथा आनन्द उसके अन्दर से ही उत्पन्न होती है। भौतिक संसाधनों से उत्पन्न आनन्द की उत्पत्ति क्षणिक मात्र होती है। इन भौतिक संसाधनों के कारण से व्यक्ति अपने अन्दर निहित अपार क्षमताओं से अनभिज्ञ है।

अतः व्यक्ति को अपनी क्षमताओं के विकास के लिए योग पथ की ओर अग्रसर होना चाहिए। योग का तात्पर्य विभिन्न प्रकार के आसनों से नहीं है। योग का सही मायनों में अर्थ अपने अन्दर की चेतना को ईश्वर की चेतना से मिला देना है। इसी ईश्वरीय सत्ता के एकीकरण से मनुष्य का “शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक”⁵³ विकास होता है।

मनोविज्ञान में व्यक्ति के व्यवहार का अध्ययन संवेदन, प्रत्यक्षण, भाव एवं संवेग के द्वारा किया जाता है। व्यक्ति के सम्पूर्ण व्यक्तित्व के निर्धारण का मापन व्यक्ति के व्यवहार पर निर्भर करता है। योग मनोविज्ञान में व्यक्ति के व्यक्तित्व का विकास उसके अन्दर निहित विकारों को दूर कर उसमें दया, परोपकार की भावना को उत्पन्न कर, उसके अन्दर सुख एवं आनन्द का विकास करना है, जिससे उसके व्यक्तित्व को सकारात्मक दिशा मिल सके।

योग एवं मनोविज्ञान में संबंध

योग तथा मनोविज्ञान काफी हद तक एक दूसरे के पूरक हैं। योग एवं मनोविज्ञान इन दोनों में समानता यह है, कि इनका उद्देश्य व्यक्ति के समग्र विकास से है। योग का मुख्य लक्ष्य व्यक्ति की चेतना के बिखराव को दूर कर, उसका पूर्णतः विकास अर्थात् चेतना का विकास, जिससे व्यक्ति मानसिक, शारीरिक, सामाजिक तथा आध्यात्मिक स्तर पर आगे की

⁵² डॉ० रूपम. (2017) . *योग मनोविज्ञान*. द्वितीय संस्करण. दिल्ली : मोतीलाल बनारसीदास. पृ. 01.

⁵³ डॉ० रूपम. (2017) . *योग मनोविज्ञान*. द्वितीय संस्करण. दिल्ली : मोतीलाल बनारसीदास. पृ. 01.

ओर बढ़ सके। इसी प्रकार मनोविज्ञान का लक्ष्य व्यक्ति के भीतर उत्पन्न अनुभवों के आधार पर व्यक्ति के व्यवहार की समग्रता को समझना है। जिससे व्यक्ति अपनी दैहिक एवं मन के स्तर पर सुदृढ़ होकर दोनों के बीच सामन्जस्य को स्थापित कर सके तथा साथ ही विभिन्न परिस्थितियों में अपनी विवेक बुद्धि का उपयोग कर, परिस्थितियों के अनुसार ताल-मेल बिठा सके।

मनोविज्ञान तथा योग दोनों का ही उद्भव दर्शन की शाखा से हुआ है। ग्रीक तत्वज्ञानियों के विचार से मनोविज्ञान की उत्पत्ति हुई है, जिसे मनोविज्ञान के संदर्भ में प्रतिपादित किया है, कि मनोविज्ञान आत्मा के अध्ययन से संबंधित है, तथा बाद में इसमें कई परिवर्तन होते गये। योग का संबंध भी भारतीय दर्शन की शाखा से है।

योग एवं मनोविज्ञान दोनों ही अपने उद्देश्य में समानता रखते हैं। इन दोनों का परिप्रेक्ष्य वैज्ञानिक है। मनोविज्ञान तथा योग दोनों का लक्ष्य व्यक्ति को हर विषम परिस्थिति में अनुकूल बनाने से है। जिसके कारण व्यक्ति मानसिक एवं शारीरिक रूप से सुदृढ़ एवं सबलता को प्राप्त हो तथा अपनी विकसित क्षमताओं का समयानुसार उपयोग कर सके। योग का प्रयोजन व्यक्ति की चेतना के विकास से है। जिससे व्यक्ति आनन्द एवं सुख की प्राप्ति कर पाये। इस उद्देश्य की प्राप्ति में मनुष्य को शरीर एवं मन से मजबूत होना है।

मनोविज्ञान तथा योग दोनों ही श्रेणियों का संबंध मनुष्य की बुद्धि को आधार बनाकर व्यक्ति के व्यक्तित्व एवं व्यवहार को समझना है। मनोवैज्ञानिकों को यह विश्वास है, कि व्यक्ति का व्यवहार उसके प्रत्यक्षण पर निर्भर करता है, एवं व्यक्ति की बुद्धि का आधार परिस्थिति जन्य प्रत्यक्षण पर आधारित होता है।

अतः मनुष्य के व्यवहार में परिवर्तन लाने के लिए उसकी बुद्धि पर काम करना होगा। ठीक इसी प्रकार व्यक्ति का व्यक्तित्व तथा व्यवहार चित्त में व्याप्त संस्कार रूपी क्रियाशील वृत्ति पर निर्भर होता है। चित्त की वृत्तियों का संबंध, बुद्धि के धरातल पर आधारित होता है। व्यक्ति में सोच, विचार, ज्ञान प्राप्ति ये सारे गुण संज्ञान से संबंधित हैं। जिसके फलस्वरूप इन वृत्तियों पर नियंत्रण द्वारा व्यक्तित्व के विकास में सहायता मिलती है। आज के आधुनिक मनश्चिकित्सक का लक्ष्य मनुष्य में व्याप्त क्षमताओं का विकास कर उसे

सुव्यवस्थित एवं सुनियोजित बनाना है। पतंजलि योग व्यक्ति को स्वस्थ बनाने के साथ-साथ योग्य व्यक्तित्व एवं चरित्र का निर्माण करता है। जिससे व्यक्ति के मन की परतें खुलती हैं, तथा वह आत्मसाक्षात्मकार अर्थात् बोध एवं ज्ञान द्वारा स्वयं का मूल्यांकन कर पाता है।

पतंजलि जी का नाता योग एवं मनोविज्ञान से बहुत पुराना है। पतंजलि द्वारा प्रतिपादित सूत्रों की प्रविधियाँ तथा मनसचिकित्सा में पाई जाने वाली प्रविधियों में समानता है। योग में व्यक्ति को किसी एक विषय से संबंधित अभिरुचि रखना चाहिए, “जिसे शौक या hobby”⁵⁴ कहा जाता है एवं आधुनिक चिकित्सा में इसे ‘व्यवहार-चिकित्सा’ कहा जाता है। यौगिक पद्धति प्रणाली में दूसरों के लिए सकारात्मक रवैया अपनाने के लिए कहा जाता है, जिसका उपयोग चिकित्सक अपने रोगियों के लिए करते हैं, जिससे उनके दिमाग पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। मनश्चिकित्सक इस बात से भी सहमत है, कि नियंत्रणविहीन श्वासों का संबंध, मन से भी होता है। इस अनियंत्रित श्वास-प्रश्वास जिसका संबंध मन से भी हो उसको सहज रूप में नियंत्रण में लाने के लिए योग में प्राणायाम पर बल दिया गया है। प्राणायाम से श्वास-प्रश्वास नियंत्रित होता है तथा मन भी शांत होता है।

योग प्रणाली में ध्यान की चर्चा अभिनिहित है, जिसे मनश्चिकित्सक अपनी उपचार प्रणाली में अपनाते हैं। ध्यान द्वारा मन शांत अवस्था को प्राप्त होता है, जिससे मन तनाव रहित एवं स्वस्थ होता है।

योग मनोविज्ञान के उद्देश्य

(1) योग मनोविज्ञान, विज्ञान की शाखा के ही अंतर्गत आता है। जिसे सकारात्मक विज्ञान की संज्ञा दी गई है। इससे व्यक्तियों के व्यवहार को एक दिशा दी जाती है। व्यक्ति के असामान्य व्यवहार को सामान्य कैसे बनाया जाये, इसकी पूर्ण जानकारी योग मनोविज्ञान देता है।

(2) योग मनोविज्ञान में व्यक्ति के अस्तित्व के अंतर्गत, आने वाले व्यक्तित्व व मन दोनों से ही संबंधित प्रणालियों का अध्ययन किया जाता है।

⁵⁴ डॉ० रुपम. (2017). *योग मनोविज्ञान*. द्वितीय संस्करण. दिल्ली : मोतीलाल बनारसीदास. पृ. 18.

- (3) जिसमें व्यक्ति के मन से संबंधित चेतन व अचेतन पहलूओं के अन्तर्गत आने वाली भावनाओं, शरीर संबंधी संवेगों, विचार संबंधी चिंतन पर अध्ययन किया जाता है।
- (4) मन के सभी पहलू व्यक्ति के व्यवहार व व्यक्तित्व को संदर्भित करते हैं।
- (5) योग में निहित यौगिक पद्धतियों द्वारा व्यक्ति को मानसिक व शारीरिक रूप से सबल व सुदृढ़ बनाया जाता है।
- (6) योग मनोविज्ञान में व्यक्ति की कुंडलिनी को जागृत करने के लिए कई उपायों का वर्णन किया है। कुण्डलिनी जागरण से व्यक्ति का सम्पूर्ण व्यक्तित्व पराकाष्ठा की उच्च अवस्था को भी पार कर लेता है।

2.6 भारतीय मनोविज्ञान एवं पाश्चात्य मनोविज्ञान में अंतर

भारतीय मनोविज्ञान एवं पाश्चात्य मनोविज्ञान में बहुत ही बड़ा अंतर है। पाश्चात्य मनोविज्ञान मानव व्यवहार के अध्ययन तक ही सीमित है। वह मानव मन की विकृत समस्याओं को मानसिक एवं उसके व्यवहार की प्रतिबिंबता को मन एवं बुद्धि के स्तर तक ही चिन्हित करता है। जबकि भारतीय मनोविज्ञान में मन के स्तर की समस्याओं को आत्मविश्लेषण के गहन स्तर तक सुलझाता है। भारतीय, पाश्चात्य मनोविज्ञान को ईश्वरवादी एवं अनिश्चरवादी दो क्षेत्रों में वर्गीकृत किया है। भारतीय मनोविज्ञान का अंतिम लक्ष्य मोक्ष की प्राप्ति है, जबकि पाश्चात्य मनोविज्ञान मोक्ष के लक्ष्य से कोसों दूर है। भारतीय मनोविज्ञान में भारतीय परम्परा का क्षेत्र बहुत ही व्यापक रहा है, जबकि पाश्चात्य मनोविज्ञान का क्षेत्र बहुत ही संक्षिप्त है। भारतीय मनोविज्ञान मन तथा इन्द्रिय नियंत्रण के साथ आत्मसाक्षात्कार के पहलू को अपनाती है, जबकि पाश्चात्य दर्शन में इस पक्ष का अभाव है। भारतीय मनोविज्ञान मन की शांति के लिए सत्संग, निष्काम कर्म, अष्टांग योग तथा हठयोग को एक विशेष विषय मानती है, जबकि पाश्चात्य मनोविज्ञान में इसका कोई आधार ही नहीं है। भारतीय मनोविज्ञान में मन की शैली आहार को माना गया है। कहा भी गया है:— जैसा खावे अन्न वैसा होवे मन अर्थात् जिस प्रकार के आहार का सेवन व्यक्ति के द्वारा किया जायेगा उसका आत्मिक विकास भी उसी प्रकार का होगा। इसमें व्यक्ति की निष्ठा भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है, अर्थात् व्यक्ति का मन, शुद्ध एवं सात्विक होगा उसका आहार एवं आचरण व्यक्ति की निष्ठा के अनुकूल होगा। यदि व्यक्ति की निष्ठा सामान्यीकृत भाव से प्रतिकूल होगी, तो उसका आहार एवं आचरण रजस एवं तमस के अनुकूल होगा। उसका व्यवहार आलस्य से युक्त एवं हिंसात्मक प्रवृत्ति के अनुकूल होगा। पाश्चात्य मनोविज्ञान में इस आधारशिला की कोई नींव ही नहीं है।

तृतीय अध्याय

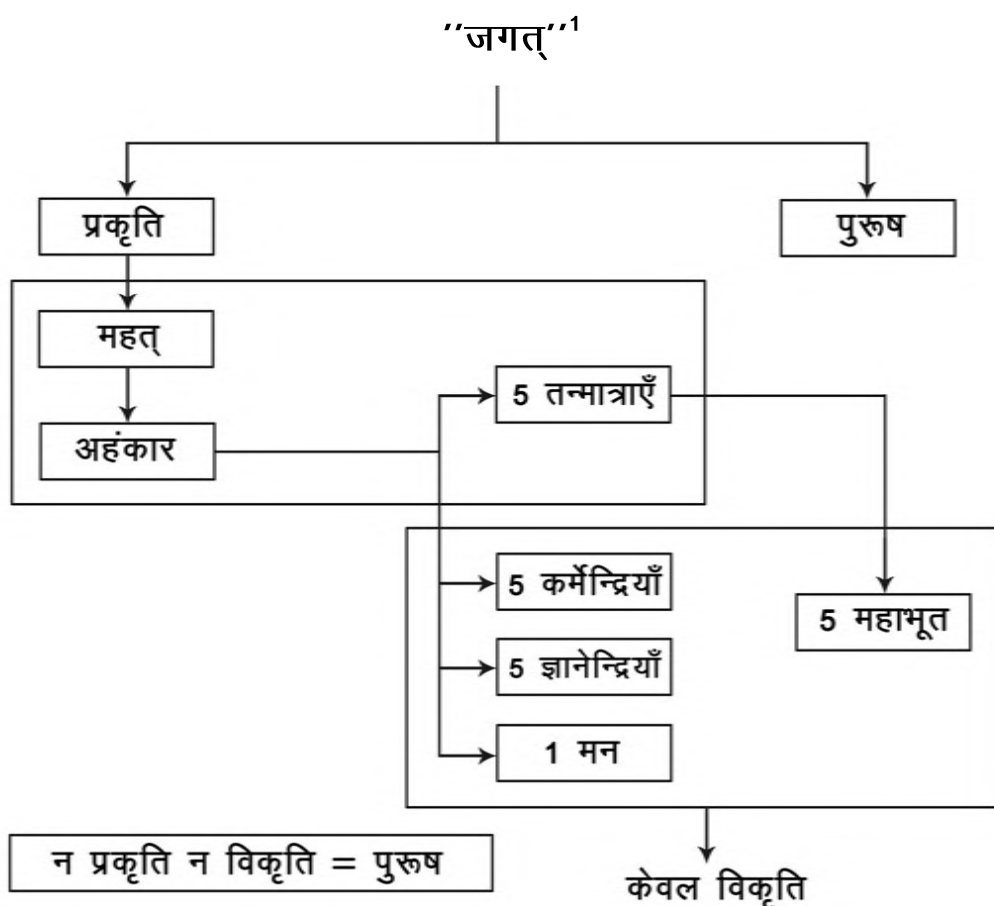
चित्त एवं वृत्ति की अवधारणा

- 3.1 चित्त की सामान्य अवधारणा
- 3.2 चित्त में उत्पन्न विघ्न
- 3.3 वृत्ति की सामान्य अवधारणा

3 चित्त एवं वृत्ति की अवधारणा

3.1 चित्त की सामान्य अवधारणा

प्रकृति जब अपनी अव्यक्त अवस्था में होती है, तब प्रकृति के तीन गुण (सत्त्व, रजस एवं तमस) अपरिवर्तनशील अवस्था में रहते हैं। किन्तु जब पुरुष के चेतन का प्रकाश प्रकृति पर पड़ता है, तब प्रकृति में हलचल प्रारम्भ हो जाती है, जिसके परिणाम स्वरूप संसार में विभिन्न वस्तुओं का उद्गम होता है, एवं प्रकृति के हर एक पदार्थ में त्रिगुण का प्रभाव रहता है।



ईश्वर को मिलकर इसमें कुल 26 तत्व संग्रहित हैं।

¹ डॉ० कुमार, हरीश. (2020). *योग-सिद्धान्त संग्रह*. गाजियाबाद : राधाप्रेस, पृ. 22.

3.1.1 चित्त की परिभाषा

“चित्त शब्द का अभिप्राय समग्र चेतना से है जो हमारे भीतर तथा बाहर व्याप्त है। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि चेतना वह सूत्र है जिसमें अनगिनत जन्मों के अनुभव तथा संस्कार संचित रहते हैं।”²

“वेदान्त दर्शन में मन, बुद्धि, चित्त तथा अहंकार को अन्तःकरण प्रतिपादित किया है, जबकि सांख्य में मन, बुद्धि, अहंकार इन तीनों को अन्तःकरण के रूप में बतलाया है। योगदर्शन में मन, बुद्धि, चित्त तथा अहंकार को अन्तःकरण के रूप में स्वीकृत किया है।”³

3.1.2 चित्त की अवस्थाएँ

“चित्त की पांच अवस्थाओं का वर्गीकरण”⁴

क्र.	अवस्था	तमस्	रजस्	सत्त्व	प्रवृत्ति
1	क्षिप्त	प्रक्षीण	बाहुल्य	प्रक्षीण	अज्ञान, अधर्म, राग, अनैश्वर्य, ज्ञान, धर्म, वैराग्य, ऐश्वर्य
2	मूढ़	बाहुल्य			अधर्म, अज्ञान, अवैराग्य, अनैश्वर्य की ओर प्रवृत्ति
3	विक्षिप्त	प्रक्षीण	अल्प	बहुलता	धर्म, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्य की ओर प्रवृत्ति
4	एकाग्र	प्रक्षीण	प्रक्षीण	पूर्णता	संप्रज्ञात समाधि
5	निरुद्ध	अभाव	अभाव	अभाव	असंप्रज्ञात समाधि

² डॉ० रूपम. (2017). *योग मनोविज्ञान*. द्वितीय संस्करण. दिल्ली : मोतीलाल बनारसीदास. पृ. 14.

³ डॉ० श्रीवास्तव, सुरेशचन्द्र. (2018). *पातंजलयोगदर्शनम्*. वाराणसी : चौखम्बा, सुरभारती प्रकाशन. पृ. 10.

⁴ श्री. स्वामी, तीर्थ, ओमानन्द. सं. (2072). *पातंजलयोगप्रदीप*. सं. गोरखपुर : गीताप्रेस पृ. 177.

3.1.3 चित्त के प्रकार

“भेद की दृष्टि से चित्त में तीन प्रकार की बहुलता पाई जाती है।”⁵

- (1) सत्त्व
- (2) रजस
- (3) तमस

(1) सत्त्व— सत्त्व ज्ञान का प्रकाशक है।

(2) रजस— क्रियाशीलता का द्योतक है।

(3) तमस— स्थिति का प्रतीक है।

“सत्त्व प्रख्याशील, रज प्रवृत्तिशील तथा तमस स्थितिशील का प्रतीक है।”⁶

प्रख्याशील चित्त

प्रख्या का अर्थ है “ज्ञान, प्रकाश”⁷। प्रख्याशील चित्त सत्त्व का प्रकाशक है, किन्तु सांसारिक दृष्टि से सत्त्व में भी दोष पाये जाने के कारण इसका बाहुल्य कम हो जाता है तथा रज एवं तम प्रक्षीण नहीं होते, इन दोनों की प्रधानता का गुण इसमें पाया जाता है। रज एवं तम दोनों की बाहुल्यता के कारण (ऐश्वर्य, विषय) यह सांसारिक सुखों के प्रति आकर्षित होता है। यहाँ सत्त्व का स्वरूप शुद्धतम नहीं है। यहाँ पर सत्त्व का आशय किसी वस्तु को जानने के आशय से है, कि मैं इस वस्तु को जानना चाहता हूँ। प्रख्याशील चित्त में सत्त्व पूर्ण रूप से प्रक्षीण नहीं होता, इसका अंश रज एवं तम में थोड़ा रहता है।

⁵ प्रो० शास्त्री, ज्ञानप्रकाश, प्रो०. भारद्वाज, ईश्वर. (2019). *महर्षि पतंजलिकृत योगसूत्र*. संस्करण. दिल्ली : परिमल पब्लिकेशन्स पृ. 52.

⁶ आर्य, सतीश. (2016). *पातंजल योगदर्शन (व्यासभाष्य एवं भोजवृत्ति सहित)* दिल्ली : परिमल पब्लिकेशन पृ. 32.

⁷ भारती रौशनकुमार. “पतंजलि योगसूत्र एवं अभिधम्म पिटक में चित्त का स्वरूप : एक समीक्षात्मक अध्ययन” पृ. 30.

“विज्ञानभिक्षु के अनुसार चित्त की यह अवस्था क्षिप्त भूमि की है तथा वाचस्पति मिश्र के अनुसार चित्त की यह अवस्था विक्षिप्त भूमि की है। किन्तु व्यासभाष्य में चित्त की यह अवस्था क्षिप्त भूमि की मानी गई है।”⁸

प्रवृत्ति शील चित्त

“प्रवृत्ति का तात्पर्य क्रियाशीलता से है।”⁹ संसार की वस्तुओं में क्रिया का आधार पाया जाता है, जिसका स्वरूप रज है। इसमें तमो गुण का लेश मात्र भी नहीं पाया जाता, इसमें सत्त्व गुण की प्रधानता पाई जाती है, जिसके परिणामस्वरूप धर्म, ज्ञान और वैराग्य की भावना उत्पन्न होती है तथा इसमें (सत्त्व) जब रजोगुण का सन्सर्ग होता है। तब उस व्यक्ति में सांसारिक अभ्युदय के साथ-साथ धर्म, ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य को पाने की आसक्ति उत्पन्न हो जाती है।

स्थितिशील चित्त

इसका तात्पर्य क्रियाशीलता का अभाव अर्थात् ठहराव है। स्थितिशील चित्त में सत्त्व एवं रज का एक मात्र भी अंश शेष नहीं रहता। तमो गुण का द्योतक आलस्य, भारीपन से है। यह रज एवं सत्त्व के विपरीत अधर्म, अज्ञान तथा अवैराग्य का द्योतक है।

3.1.4 चित्त की भूमियाँ

“चित्त की पांच भूमियों के प्रकार निम्न हैं।”¹⁰

- (1) क्षिप्त
- (2) मूढ़
- (3) विक्षिप्त
- (4) एकाग्र

⁸ भारती रौशनकुमार, “पतंजलि योगसूत्र एवं अभिधम्म पिटक में चित्त का स्वरूप : एक समीक्षात्मक अध्ययन” पृ. 30.

⁹ भारती रौशनकुमार, “पतंजलि योगसूत्र एवं अभिधम्म पिटक में चित्त का स्वरूप : एक समीक्षात्मक अध्ययन” पृ. 31.

¹⁰ डॉ० कुमार, हरीश. (2020). योग-सिद्धान्त संग्रह, गाजियाबाद : राधाप्रेस, पृ. 117.

(5) निरुद्ध

(1) क्षिप्त अवस्था

क्षिप्त की यह अवस्था अत्यन्त चंचल प्रवृत्ति की होती है, इस प्रवृत्ति का सूचक रज है। इसमें तमोगुण व सत्वगुण अपनी क्षुब्ध अवस्था में दबे हुए रहते हैं, जिसके कारण क्षिप्त अवस्था वाला व्यक्ति कामुक, मन की अस्थिर दशा, किसी वस्तु के प्राप्त न होने पर दुःखी, दुःख के भवर में फंसकर कभी सुखी व कभी दुःखी होता है। जो समाज में अराजकता का कारण बनता है।

इस अवस्था में सत्व एवं तम गौढ़ अवस्था में दबे रहते हैं। जब सत्व, तम के गुण को प्रक्षीण करता है, तब व्यक्ति धर्म, ज्ञान, वैराग्य आदि में प्रवृत्त होता है और जब तम, सत्व के गुण को प्रक्षीण करता है, तब व्यक्ति अधर्म, अज्ञान, अनैश्वर्य की ओर प्रवृत्त होता है, इन दोनों का मिला-जुला स्वरूप धर्म-अधर्म, ज्ञान-अज्ञान, ऐश्वर्य-अनैश्वर्य जैसी सांसारिक व्यक्तियों की होती है।

इस अवस्था में व्यक्ति की एक तारतम्यता बनी रहती है, अर्थात् एक विषय की वृत्ति का उद्गम तथा बाकी विषय क्षुब्ध अवस्था में रहते हैं। जिसके फलस्वरूप इसमें मल रूपी विकारों की अधिक प्रवृत्ति पाई जाती है। इसलिए यह समाधि की श्रेणी में नहीं आती, जो कैवल्य को न प्रदान करने वाली है। योग स्थिरता के स्तर को दर्शाता है। जबकि समाधि चित्त की अस्थिर दशा को व्यक्त करती है। इस तरह के व्यक्ति संसार में रहते हुए विवेक, बुद्धि का उपयोग न करके मूर्खों की भांति अपने चित्त की अस्थिर दशा के परिणाम स्वरूप असंगत रूपी कार्य करते हैं।

(2) मूढ़ अवस्था

इसमें प्रायः क्लिष्ट तथा अविद्या आदि संस्कारों का उदय होता है। परन्तु इसमें केवल एक ही विषय की उन्मुखता रहती है। मूढ़ का तात्पर्य तमस प्रवृत्ति की क्रियाशीलता से है। जिसमें सत्व व रजस प्रायः गौढ़ अवस्था में दबे हुए होते हैं। इसका मुख्य अभिप्राय जड़ता से है।

तमस स्थिरता का, रजस क्रियाशीलता का तथा सत्व प्रकाशक का गुण रखता है। जिसमें प्रायः रजस की क्रियाशीलता और सत्व के प्रकाश रूपी गुण क्षुब्ध अवस्था में रहते हैं तथा एक ही विषय का उदय होता है, बाकी विषयों का अभाव रहता है।

मूढ़ रूपी व्यक्ति की विशेषताएँ

अक्रियाशील, अधर्म में प्रवृत्ति, अज्ञानी, वैराग्य का अभाव, जड़ता, मन्द बुद्धि, आसक्ति, द्वेष इत्यादि ये गुण मूढ़ रूपी व्यक्ति के हैं। इसमें प्रायः समाधि होती है, परन्तु ये योग की श्रेणी में नहीं आते हैं। व्यास भाष्य में वर्णित है, कि समाधि चित्त की सभी भूमियों में रहने वाला धर्म है।

चित्त की इन पांचों भूमियों में समाधि तो होती है, परन्तु अन्त की दो अवस्थाओं में समाधि नहीं होती, इन दो अवस्थाओं (एकाग्र एवं निरुद्ध) को योग की कोटी में रखा जाता है। ये तो केवल वाक्य का अर्थ है, उसका गूढ़ अर्थ बुद्धिमत्ता के धरातल स्तर पर व्याख्याकारों ने शास्त्रों में प्रतिपादित किया है।

मूढ़ अवस्था में समाधि होने का तात्पर्य योग की कोटि से नहीं है, इसमें केवल तमस रूपी एक ही संस्कारों का उदय होता है तथा इसमें मोक्ष का अभाव होता है। इसलिए यह अवस्था योग की श्रेणी में नहीं आती। ये संसार रूपी बन्धन का कारण है, जिसके कारण मनुष्य अपने दुष्कृत कर्मों के परिणामस्वरूप जन्म-मरण रूपी संसार में पुनः जन्म लेता है और मोक्ष रूपी बन्धन को तोड़ने वाला ज्ञान जड़ बुद्धि में उदय नहीं होता। ऐसी प्रवृत्ति मुख्यतः अधम मनुष्य की होती है, जो कि मादक रूपी भावों से घिरे रहते हैं।

उदाहरणार्थ— तमो गुण रूपी मनुष्य की प्रवृत्ति निम्न कोटि की होती है। इस प्रकार के व्यक्ति अच्छे कर्मों में प्रवृत्त नहीं होते हैं। इनमें किसी भी प्रकार की क्रियाशीलता का अभाव रहता है। प्रायः इस प्रकार के व्यक्ति, दूसरे व्यक्ति के प्राप्त वस्तुओं को अपने अधिकार क्षेत्र में लेना ही या दूसरे की प्राप्य वस्तुओं का ग्रहण करना ही अपना धर्म समझते हैं। मूढ़ व्यक्ति में विवेक बुद्धि का अभाव रहता है, जो कि मल रूपी समाधि की श्रेणी में आती है, योग की श्रेणी में नहीं। इसमें चित्त की सभी वृत्तियों का उदय नहीं होता, अपितु एक ही वृत्ति का उदय होता है, जो कि पाप रूपी आचरण के अन्तर्गत आती है। इस प्रकार के व्यक्तियों में अपरिग्रह

का अभाव होता है। ये व्यक्ति अष्टांग रूपी अंगों का पालन नहीं करते, ये उनके विपरीत स्वधर्मों का पालन करते हैं।

(3) विक्षिप्त अवस्था

विक्षिप्त अवस्था से अभिप्राय है कि चित्त का थोड़े समय के लिए स्थिर होना, फिर अस्थिर होना। इसका मूलतः कारण जब चित्त में सतोगुण का प्रवाह अपने आधिक्य के कारण चरम अवस्था में रहती है। जिसके कारण व्यक्ति के सामाजिक दायित्वों व सत्संग में एक विशिष्ट भागीदारी होती है। व्यक्ति में क्षमाशीलता, धैर्य, साहस एवं उत्साह आदि गुणों का वास होता है। किन्तु जब व्यक्ति में स्थिरता का स्तर किसी कारण से टूट जाता है, तब उसमें रजोगुण की अधिकता के कारण उसमें सतोगुण की प्रबलता कम हो जाती है और फिर वह पुरानी अवस्था में वापस लौट आता है। इस तरह के व्यक्तियों में प्रेरणा के प्रवाह की आवश्यकता बाहरी संसाधनों से होती है। इसमें थोड़े समय के लिए यह लगता है, कि इसकी अवस्था बिल्कुल एकाग्र भूमि जैसी है, किन्तु जब सत्त्वगुण की तारतम्यता का स्तर टूटता है, तब वह अस्थिर रजोगुण के आधिक्य में आता है। इसमें स्थिरता का स्तर पूर्णतः बदल जाता है। यह अवस्था योग से दूर होकर समाधि के स्तर पर पहुँच जाती है, जो अस्थिरता का प्रतीक है।

(4) एकाग्र अवस्था

एकाग्र की इस अवस्था में रज व तम रूपी विकार कम हो जाते हैं और उस समय सतोगुण की प्रबलता अधिक रहती है। यह उपरोक्त तीन अवस्थाओं से भिन्न है। एकाग्र अवस्था, निरुद्ध भूमि तक पहुँचने का एक माध्यम है। तथाकथित प्रश्न का उद्भव यहाँ पर होता है, कि बाकी दो भूमियों (मूढ़, क्षिप्त) में केवल एक विषय की उन्मुखता रहती है, जबकि विक्षिप्त भूमि में चित्त की एक उन्मुखता टूटकर उसमें दूसरा गुण अपना आधिपत्य कर लेता है। इन तीनों में स्थिरता का अभाव होता है तथा इन तीनों का निरुद्ध भूमि की ओर अग्रसर होना असंभव होता है। यह गुण केवल ओर केवल एकाग्र भूमि में पाया जाता है, क्योंकि यह एक कदम निरुद्ध भूमि की ओर बढ़ाती है। यह कर्म के पाश अर्थात् बन्धन को ढीला करती है। इसमें एकाग्रता का जो स्तर है, वो बाकी शुरुवात की तीन भूमियों की अपेक्षा अधिक होती है। इस अवस्था में योगी की विवेक बुद्धि का उदय होता है। अर्थात् वह सही व गलत के कार्यों के प्रति क्या

करने योग्य है, क्या करने योग्य नहीं है। इसका पूर्णतः पक्षधर होता है। वास्तव में यही विशिष्ट मनुष्य की विशेषता है इस अवस्था में मनुष्य के विचारों पर अपना पूर्ण नियन्त्रण होता है। इसमें कोई असहज विचार व्यक्ति के सात्विक विचारों को बाधित नहीं करते, इसमें अविद्यादि क्लेशों का पूर्णरूप से क्षय हो जाता है। इस अवस्था में व्यक्ति निरुद्ध भूमि में पहुँचने से पहले स्व का मूल्यांकन करता है। जिसके परिणामस्वरूप वह सुकृत एवं दुष्कृत कार्यों के परिणाम को छोड़कर जन्म-मृत्यु के चक्र में बांधने वाले बन्धनों को त्याज्य योग्य बनाकर निरुद्ध भूमि की ओर अग्रसर करती है एवं किसी प्रकार की व्याधि से बाधित नहीं होता।

(5) निरुद्ध भूमि

जिस तरह हम पानी में कंकड़ मारते हैं, उस समय पानी में जो तरंगें उठती हैं, वह पानी अर्थात् जल में हलचल पैदा करती है। परन्तु ठीक एक समय पानी में उठ रही हलचल स्वतः समाप्त हो जाती है और इस तरह चित्त शांत जल की भांति विश्राम अवस्था में आ जाता है। एकाग्र अवस्था से होते हुए चित्त निरुद्ध अवस्था की ओर एक कदम आगे बढ़ाता है। जिसमें कर्म बंधन शिथिल होने लगते हैं। इसको हम इस प्रकार से कह सकते हैं, कि हमारे चित्त में वृत्ति और संस्कार का चक्र चलता रहता है। ये संस्कार हमारे पूर्व जन्मों के होते हैं। जो जन्म-रण रूपी चक्र में चलते रहते हैं।

इस अवस्था में वृत्ति और संस्कार का चक्र चलता रहता है। जब ज्ञान रूपी वृत्ति के संस्कार को हम रोक देते हैं, तब उसमें निरोध रूपी संस्कार शेष रहते हैं, जो सभी पूर्व के संस्कारों का शमन कर देता है।

निष्कर्षतः यह कह सकते हैं कि, आरंभिक चित्त की शुरु की इन तीन भूमियों में अर्थात् क्षिप्त, मूढ़, विक्षिप्त में मल रूपी विकार संग्रहित रहते हैं। जो मोक्ष में संदर्भित नहीं हैं। यद्यपि विक्षिप्त शुरु की दो भूमियों से काफी उत्कृष्ट है। क्षिप्त, मूढ़, विक्षिप्त में मल के आशय के साथ-साथ चित्त के नौ विक्षेप व्याधि, स्त्यान, संशय इत्यादि तथा चित्त के उपविक्षेप दुःख, दौर्मनस्य, अंगमेजयत्व ये सभी मल रूपी विकार चित्त को अस्थिर करते हैं। अर्थात् क्षिप्त में रजस का बाहुल्य होता है। जिसके फलस्वरूप चित्त में रजस की एक वृत्ति अभिनिहित, शेष सभी का

प्रक्षीण हो जाता है एवं मूढ़ में तमस की अधिकता पाई जाती है। जिसके फलस्वरूप रज एवं सत्व गौढ़ रूप में दबे रहते हैं। विक्षिप्त जिसमें सत्व प्रधान रहता है, किन्तु रज विक्षिप्त भूमि में व्यवधान उत्पन्न कर देता है। जिसके परिणामस्वरूप यह संसार की ओर आकृष्ट होता है। ठीक इसी तरह एकाग्र भूमि में सत्व का बाहुल्य अधिक मात्रा में पाया जाता है। ओर यह सत्व तेल की धारा के समान अविच्छिन्न बहता रहता है। एकाग्र भूमि निरुद्ध भूमि की ओर अग्रसर होने के लिए सेतु का कार्य करती है। इसमें सभी वृत्तियों का पूर्णतः निरोध हो जाता है।

3.2 चित्त में उत्पन्न विघ्न

“व्याधिस्त्यानसंशयप्रमादालस्याविरतिभ्रान्तिदर्शनालब्ध-
भूमिकत्वानवस्थितत्वानि चित्तविक्षेपास्तेऽन्तरायाः ॥”¹¹

(i) व्याधि

शरीर, इन्द्रिय तथा चित्त में अस्वस्थता की प्राप्ति।

(ii) स्त्यान

चित्त का स्थिर न होना।

(iii) संशय

प्रायः दो विरोधात्मक ज्ञान का बने रहना।

उदाहरणार्थ— रस्सी भी हो सकता है, साँप भी हो सकता है।

(iv) प्रमाद

समाधि के साधनों में रुचिकर रूप से भाग न लेना या उसकी अवहेलना करना।

(v) आलस्य

चित्त में तमोगुण का आधिक्य या भारीपन का होना।

(vi) अविरति

सांसारिक विषयों के प्रति आकर्षित होना।

(vii) भ्रान्ति दर्शन

मिथ्या ज्ञान या विपरीत ज्ञान।

¹¹ पातंजल योगसूत्र— 1/30

(viii) अलब्धभूमिकत्व

समाधि की भूमि का उपलब्ध न होना।

(ix) अनवस्थितत्व

समाधि की भूमि प्राप्त होने पर भी उस पर स्थिर न रहना।

इन चित्त के विक्षेपों को योग अंतराय, विघ्न आदि नामों से भी जाना जाता है।

पाँच विघ्न या उपविक्षेप

“दुःखदौर्मनस्याङ्गमेजयत्वश्वासप्रश्वास विक्षेपसहभुवः।”¹²

(i) दुःख

ये तीन प्रकार के होते हैं।

(अ) आध्यात्मिक

(ब) आधिभौतिक

(स) आधिदैविक

(अ) आध्यात्मिक

इसके अन्तर्गत शारीरिक एवं मानसिक दुःख आते हैं। जो शरीर के साथ मन को तथा मन के साथ शरीर को भी दुःख देते हैं।

(ब) आधिभौतिक

आधिभौतिक दुःख जो भूत अर्थात् प्राणियों के द्वारा दिये जाते हैं।

¹² पातंजल योगसूत्र— 1/31

(स) आधिदैविक

ऐसे दुःख जो बाढ़, भूकम्प आदि के द्वारा प्राप्त होते हैं।

(ii) दौर्मनस्य

इच्छा पूर्ति न होने, चित्त का किसी भी विषय में मन का न लगना।

(iii) अंगमेजयत्त्व

अंगों का कंपित होना।

(iv) श्वास

वायु को भीतर प्रवेश कराना।

(v) प्रश्वास

वायु को शरीर से बाहर निकालना।

3.3 वृत्ति की सामान्य अवधारणा

3.3.1 वृत्ति का अर्थ

“वृत्ति हिन्दी के ‘वृत्त धातु’ से निष्पन्न है, जिसका अर्थ है ‘परिधि अथवा गोल’।”¹³ मनुष्य के चित्त में सत्व, रजस एवं तमस के प्रभाव के कारण व्यक्ति के मन में कई विचार रूपी तरंगे उठती रहती हैं। “जब जलाशय में पत्थर फेंका जाता तब पानी में लहरें गोलाकार रूप में उत्पन्न होती है उसी प्रकार हमारी चेतना में भी गोलाकार वृत्तियाँ उत्पन्न होती रहती हैं। इसलिए चित्त की अवस्थाओं को वृत्ति कहा गया है।”¹⁴ इन त्रिगुणों के आधार पर व्यक्ति के चित्त में भेद रूप वाली दो क्लिष्ट एवं अक्लिष्ट वृत्तियाँ उत्पन्न होती हैं, जो अविद्या का धारण करती है, वो क्लिष्ट वृत्ति तथा जो विद्या का धारण करती है, वो अक्लिष्ट वृत्ति होती है।

3.3.2 वृत्तियों का स्वरूप

“वृत्तयः पञ्चतयः क्लिष्टाक्लिष्टाः।”¹⁵

क्लेश अच्छे या बुरे नहीं होते, किस भाव में अथवा किस दशा में वो परिणाम दे रहे हैं, ये उनके चित्त के संस्कारों की व्युत्पत्ति का परिणाम है। क्लिष्ट वृत्ति अविद्या से युक्त होती है तथा ये योगमार्ग में बाधक है। ठीक इसी तरह दूसरी वृत्ति अक्लिष्ट अर्थात् अविद्यादि क्लेशों का नाश करने वाली तथा योग मार्ग में साधक है। ये पांच प्रकार के क्लेशों से युक्त वृत्तियाँ दो स्वरूप वाली होती है।

(अ) क्लिष्ट वृत्ति

(ब) अक्लिष्ट वृत्ति

¹³ सरस्वती, स्वामी, सत्यानन्द. (2013). *मुक्ति के चार सोपान (पातंजल योग सूत्र का यौगिक भाष्य)*, द्वितीय संस्करण. मुंगेर (बिहार) : योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, पृ. 31.

¹⁴ डॉ० रूपम. (2017). *योग मनोविज्ञान*, द्वितीय संस्करण. दिल्ली : मोतीलाल बनारसीदास. पृ 14.

¹⁵ पातंजल योगसूत्र— 1/5

(अ) क्लिष्ट वृत्ति

जिन वृत्तियों का उद्गम पंचक्लेशों के सायुज्य अर्थात् अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष, अभिनिवेश इन पाँचों से युक्त हो, वे क्लिष्ट वृत्तियाँ कहलाती हैं। ये दुःख रूपी तथा सुख रूपी दो प्रकार की अविद्याओं से युक्त हैं। क्योंकि इस प्रकार की वृत्ति में बुद्धि एवं पुरुष का तादात्म्य बना रहता है, जो कि अज्ञान का मूलक है तथा चित्त में जो संस्कार वासना रूपी कर्मों का विपाक अथवा फल बना रहता है, वो या तो पूर्व जन्म के संचित कर्म होते हैं, जो इस भावी जन्म में मनुष्य के द्वारा किया जायेगा तथा इस जन्म में व्यक्ति जो भी कर्म करेगा वो अगले जन्म के लिए चित्त में संग्रहित हो जायेगा। इस प्रकार संस्कार वृत्ति तथा वृत्ति संस्कार नामक रूपी चक्र चलता रहता है।

“अविद्यास्मितारागद्वेषाभिनिवेशाः क्लेशाः।”¹⁶

क्लेश का मूल वाचक अविद्या है, जिसे दूसरे शब्दों में विपर्यय, मिथ्या ज्ञान, अध्यास एवं अध्यारोप से अभिविहित किया है। इसी अविद्या के फलस्वरूप इस सम्पूर्ण जगत का निर्माण हुआ। सारे प्रपंच इसी अविद्या मूलक का आधार हैं। इस पूर्ण रूपी जगत जो अविद्या का द्योतक है, वही बन्धन रूपी जन्म मरण के चक्र में फँसाता है। ये अविद्या से युक्त क्लेश मनुष्य को दुःख देने वाली तथा अत्यन्त कष्टकारी होती है। अविद्या से युक्त क्लेश क्लिष्ट वृत्तियों को उत्पन्न करती है। ये गुणों के अधिकार का द्योतक है। क्लेशों से युक्त दशा अर्थात् व्युत्थान दशा में चित्त की वृत्तियों का निरोध संभव नहीं है।

“अविद्या क्षेत्रमुत्तरेषां प्रसुप्ततनुविच्छिन्नोदाराणाम्”¹⁷

अविद्या ही अस्मिता, राग, द्वेष, अभिनिवेश की मूल जननी कही जाती है। “जब तक चित्त में अविद्या रहेगी तब तक ही इन चारों की उपस्थिति चित्त में रहेगी और अविद्या के नष्ट होने पर इन चारों की भी समाप्ति स्वतः ही हो जायेगी।”¹⁸

¹⁶ पातंजल योगसूत्र— 2/3

¹⁷ पातंजल योगसूत्र— 2/4

¹⁸ आर्य, सतीश. (2016). *पातंजल योगदर्शन (व्यासभाष्य एवं भोजवृत्ति सहित)*. दिल्ली : परिमल पब्लिकेशन पृ. 263.

महर्षि पतंजलि ने इन क्लेशों के चार भेद निरूपित किए हैं।

प्रसुप्त अवस्था

तनु अवस्था

विच्छिन्न अवस्था

उदार अवस्था

प्रसुप्त अवस्था

ऐसे संस्कार जो चित्त में सोई हुई अवस्था में विद्यमान रहते हैं। ऐसी अवस्था प्रसुप्त अवस्था कहलाती है। परन्तु चित्त में ये प्रसुप्त संस्कार प्रबल परिस्थिति आने पर भोग के लिए जाग उठती है।

उदाहरणार्थ— “बाल्यावस्था में वासना रूपी संस्कार एक समय तक सोये रहते हैं। किन्तु जैसे ही बालक की बाल्यावस्था समाप्त होकर यौवनावस्था के चरण में कदम रखती हैं, तो ये वासना रूपी संस्कार जो प्रसुप्त अवस्था में सोये रहते हैं, प्रबल परिस्थितियों का आलम्बन जाग्रत होने पर अपने भोग की दशा में परिणित या स्थानांतरित हो जाते हैं।”¹⁹

तनु अवस्था

तनु अवस्था को क्रियायोग द्वारा पूर्णतः प्रक्षीण कर दिया जाता है। इस क्रियायोग का पालन मुख्यतः मध्यम कोटि के साधकों द्वारा किया जाता है। क्रियायोग द्वारा इस अवस्था को इतना प्रक्षीण कर दिया जाता है, कि साधारण परिस्थितियों पर ये जाग्रत नहीं होते, परन्तु प्रबल परिस्थिति आने पर चित्त के संस्कार जाग उठते हैं।

उदाहरणार्थ— सामान्य मनुष्य का चित्त उसकी सामान्य परिस्थितियों पर जाग्रत नहीं होता है, अर्थात् ऐसे व्यक्ति जो भोग-विलासीता की दशा से कोसों दूर होते हैं परन्तु यही सामान्य

¹⁹ स्वामी, तीर्थ, ओमानन्द. (2072). *पातंजलयोगप्रदीप*. सं. गोरखपुर : गीताप्रेस पृ. 325.

मनुष्य भोग—विलासीता से युक्त क्षेत्र में प्रवेश करते हैं, तो शहरी क्षेत्रों की भोग—विलासीता से युक्त क्षेत्र प्रबल आलंबन होने पर जाग्रत हो उठते हैं।

विच्छिन्न अवस्था

जब क्लेश से युक्त अवस्था में दुर्बल क्लेश, किसी अन्य बलशाली क्लेश द्वारा प्रबल आलम्बन पाने पर जाग्रत हो उठते हैं अर्थात् बलशाली अवस्था से युक्त क्लेश, दुर्बल अवस्था पर अपना आधिपत्य जमा लेता है, विच्छिन्न अवस्था कहलाती है।

उदाहरणार्थ— कोई व्यक्ति अपने लिए नई गाड़ी व घर खरीदता है, तो उस नई गाड़ी से वह अत्यधिक प्रेम करता है, तो उस समय उसके चित्त में केवल उस गाड़ी के प्रति राग की आसक्ति बनी रहेगी, अन्य क्लेश में से किसी एक क्लेश की वहां अनुपस्थिति नहीं रहेगी अर्थात् उस समय के लिए किसी अन्य क्लेश का आलम्बन उसके चित्त में अनुपस्थित रहेगा, क्योंकि उस समय उस गाड़ी के प्रति उसके चित्त में अत्यधिक आसक्ति विराजमान है। किन्तु जैसे ही उस गाड़ी को किसी अन्य व्यक्ति के द्वारा खरोच भी पहुंचाई जाती है, तो उस व्यक्ति के चित्त में उस व्यक्ति के प्रति द्वेष की भावना जाग्रत हो जाती है अर्थात् व्यक्ति के चित्त में राग से युक्त क्लेश वृत्ति कमजोर होकर, द्वेष रूपी क्लेश प्रबल आलंबन से युक्त राग रूपी क्लेश को प्रक्षीण कर देता है।

उदार अवस्था

यह अवस्था अपने चरमोत्कर्ष की अवस्था है। इस अवस्था में चित्त अपने बाह्य आलम्बनों को पाकर अपनी चरम स्थिति यानि भोग की अवस्था में पहुँच जाता है।

अविद्या का स्वरूप

“अनित्याशुचिदुः खानात्मसु नित्यशुचिसुखात्मख्यातिरविद्या।”²⁰

अनित्य में नित्य का बोध

प्रकृति परिवर्तनशील है। इसमें हर क्षण कुछ न कुछ परिवर्तनशीलता होती रहती है। किन्तु प्रकृति के सानिध्य में मनुष्य अपने से संबंधित जुड़ी चीजों को नित्य समझ बैठता है। विकृति की यह दशा मनुष्य की अज्ञानता के परिणामतः होती है। (वह अपनी से जुड़ी हर चीज को नित्य मानने लगता है। जिससे वस्तुतः वो चीजें जुड़ी होती हैं), जो अपनत्व के सानिध्य से जुड़ी रहती है। जिसमें ममत्व यानि अहंकार की प्रधानता होती है। मनुष्य के आपसी-रिश्ते, धन, वैभव, मान-सम्मान इत्यादि को वह नित्य समझता है और यह अज्ञान प्रकृति तथा पुरुष में भेद का परिणाम है।

अशुचि में शुचि का ज्ञान

मनुष्य का शरीर सत्, रज, तम का द्योतक है। सत्त्व प्रवृत्ति अत्यंत शुद्धता का प्रतीक है, जबकि रज एवं तम रूपी विकार अशुद्धता अथवा मलीनता का प्रतीक है। शरीर में हर एक प्रतीकात्मकता रज एवं तम रूपी विकार से युक्त है। शरीर में सत्त्व की प्रधानता होती है, परन्तु वह कम दीप्तिमान होता है, क्योंकि रज एवं तम रूपी विकार सत्त्व को प्रक्षीण कर देते हैं। इस स्थूल तथा चराचर जगत की दृष्टि से चाहे शरीर का कोई भी भाग हो, वह मलीनता से युक्त होता है। अधर्मपूर्वक किये गये धन का परिग्रह भी अपवित्र माना जाता है। कहने का आशय है, कि रज तथा तम अथवा अधर्मपूर्वक धन का परिमार्जन कर उसे अपवित्र से पवित्र भाव में देखना ही अविद्या का दूसरा स्वरूप है।

²⁰ पातंजल योगसूत्र- 2/5

दुःख में सुख का बोध

मनुष्य अपने कर्मों के आधार पर शरीर धारण करता है और सामान्य मनुष्य के रिश्ते भी उसी आधार पर जुड़े रहते हैं, जो उन्हें सुख की प्रीति अनुभव कराते हैं। फिर इन्हीं अनुभवों को सुख मानने लगता है, जो कि वास्तव में अत्यन्त दुःखदायी होते हैं। क्योंकि ये दुःख रूपी बन्धन जो सुख की प्रीति अनुभव कराते हैं, ये स्थायी नहीं हैं। योगी इन दोनों दुःखों को त्यागने योग्य समझता है।

अनात्म में आत्मा का बोध

प्रकृति—पुरुष के सानिध्य से इस विषयवार, क्रमबद्ध सृष्टि का निर्माण हुआ। जो कि प्रारंभिक अवस्था में अचेतन थी, तब इस जड़ रूपी प्रकृति में चेतनत्व रूपी पुरुष का प्रकाश इस जड़त्व रूपी प्रकृति पर पड़ा, जो कि अचेतन से चेतनयुक्त हो गई। इस संसार के सभी चराचर वस्तुओं में पुरुष रूपी सत्ता विद्यमान है, जिसे हम अज्ञानता की दृष्टि से इन अनात्म जीवों को आत्मा मानना ही अविद्या का कारण है।

अस्मिता का स्वरूप

“दृग्दर्शनशक्त्योरेकात्मतेवास्मिता।”²¹

द्रष्टा अर्थात् (पुरुष) और दर्शन शक्ति (प्रकृति) अर्थात् दोनों के अलग-अलग होने पर प्रकृति और पुरुष के सानिध्य को एक समझना ही अस्मिता का स्वरूप है। मनुष्य जो भी सांसारिक कार्य करता है, फल से संबंधित कोई भी पुण्य कर्म करता है। वह इन दोनों (पुरुष तथा प्रकृति) के तादात्म्य के स्वरूप ही करता है। इसका एक लौकिक उदाहरण है।

उदाहरणार्थ—दुर्योधन धर्म को जानता था, परन्तु उसे वह महसूस या अनुभव नहीं कर पाता था। वह किसी भी चीज पर अधिकार अधर्मपूर्वक ही करता था। क्योंकि उसमें प्रकृति—पुरुष के तादात्म्य के संस्कार इतने प्रबल थे, जो कि भौतिक मार्ग का अनुशरण करने वाले रज तथा तम से युक्त था। उसका चित्त रज तथा तम से इतना युक्त था या इतना आसक्त था, कि

²¹ पातंजल योगसूत्र— 2/6

उसकी आत्मा सत्त्व रूपी प्रकाश के गुण को नहीं पहचान पा रही थी। क्योंकि उसकी आत्मा रज तथा तम विकारों से अत्यन्त मलीन थी। जिसके परिणामतः वह अनिष्ट या कुमार्ग की ओर अग्रसर हुआ और अंत में उसका विनाश हुआ। यह अज्ञान प्रकृति तथा पुरुष के सानिध्य रूपी रज तथा तम विकारों से ही जन्मा था। एक दूसरा लौकिक नाट्य शास्त्र में उदाहरण भी प्रचलित है, कि एक ब्राह्मण व्यक्ति ने अपने गुरु से एक ब्रह्म वाक्य को सुना कि अहं ब्रह्मास्मि। अर्थात् इस चराचर जगत में जितने भी प्राणी हैं, वह ब्रह्म मैं ही हूँ, पर वो ब्राह्मण शिष्य अपने गुरु के यथार्थ वचन को समझ ही नहीं पाया और उसके चित्त में एक अज्ञानता ने जन्म लिया कि मैं ब्रह्म ही हूँ। तभी एक निरंकुश हाथी का सामना उस ब्राह्मण से हुआ और उस हाथी के सामने वह ब्राह्मण जा खड़ा हुआ, उसके चित्त में एक विचार ने जन्म लिया, कि यह हाथी मेरे ही ब्रह्म का स्वरूप है और वो हाथी उसे कुचलता हुआ चला गया। इन लौकिक उदाहरणों के प्रत्यक्षीकरण से सिर्फ इतना ही सार भूत अंश निकलता है, कि ये सम्पूर्ण चराचर जगत उस माया अथवा अविद्या का स्वरूप है। हम जो भी कार्य करते हैं, वो माया अर्थात् चित्त में उत्पन्न विचारों के सानिध्य के परिणामानुसार करते हैं और यह जड़ रूपी चित्त पुरुष के प्रकाश से जीवांत हो उठती है, जो कि प्रकृति और पुरुष के एकीकरण से ही संभव है।

सुख का राग से सम्बन्ध

“सुखानुशयी रागः।”²²

जब हम शुरुवात में किसी वस्तु का प्रमाण में उपस्थित पंचज्ञानेन्द्रियों के माध्यम से किसी वस्तु का अनुभव करते हैं, अनुभव तथा भोग की दशा दोनों का स्वरूप पृथक-पृथक है। अनुभव में हम सुख की अनुभूति करते हैं और उस सुख के प्रति जो तृष्णा या आसक्ति होती है, उसे राग कहते हैं। उस अनुभव रूपी सुख की एक प्रक्रिया है। जब हम किसी वस्तु का ज्ञानेन्द्रियों के माध्यम से अनुभव करते हैं, तब उसके अनुभव रूपी संस्कार हमारे चित्त में समाहित हो जाते हैं और जब हम उस अनुभव को पुनः भोगना चाहते हैं, तो उस संस्कार के प्रति आसक्ति पुनः जाग्रत हो उठती है। इस कारण सुख रूपी तृष्णा अथवा आसक्ति को पुनः भोगने की इच्छा प्रबल हो जाती है। जिसे राग की संज्ञा दी गई है।

²² पातंजल योगसूत्र- 2/7

उदाहरणार्थ— यदि हम रसगुल्ले का सेवन करते हैं, तो उस रसगुल्ले के सेवन के पश्चात् अनुभव रूपी संस्कार हमारे चित्त में संग्रहित होते हैं तथा जब उस अनुभव में आसक्ति हो जाती है, तो उस अनुभव के वासना रूपी संस्कार पुनः प्रबल हो जाते हैं। जिसके परिणामतः उस सुख रूपी अनुभव के प्रति पुनः आसक्ति हो जाती है और उस सुख रूपी रसगुल्ले का पुनः भोग करना चाहते हैं, जिसे हम राग से संबोधित करते हैं।

दुःख का द्वेष से सम्बन्ध

“दुःखानुशयी द्वेषः।”²³

पंचज्ञानेन्द्रियों के माध्यम से जब व्यक्ति द्वारा किसी दुःख को अनुभव किया जाता है, तब दुःख रूपी संस्कार उसके चित्त में समाहित हो जाते हैं। जो कि दुःख के अनुभव का द्योतक है तथा जब अनुभव हुआ दुःख, जो चित्त को अस्थिर करता है, एक बार पुनः दुःख उस व्यक्ति के सामने प्रत्यक्षित होता है, तो वह उस दुःख रूपी भोग से बचने का प्रयत्न करता है। वह व्यक्ति उस दुःख रूपी अनुभव की दशा में जो कि अब भोग की स्थिति है, उस दुःख से बचने का प्रयास करता है।

उदाहरणार्थ— यद्यपि कोई बच्चा जब अथक प्रयास करने के बाद भी प्रतिस्पर्धात्मक परीक्षा में असफल होता है। तो यह उसके लिए अत्यन्त दुःखदायी दशा का द्योतक है, किन्तु जब यही अनुभव रूपी दशा बार-बार उस बच्चे अथवा छात्र के समक्ष प्रकट होती है, तो वह उस दुःख रूपी दशा से बार-बार बचने का प्रयत्न करता है। अर्थात् उस प्रतिस्पर्धात्मक परीक्षा से बचने का प्रयत्न करता है, जो उसके लिए अत्यन्त कष्टकारी है। यह ज्ञान भी अविद्या का द्योतक है। जो कि प्रकृति और पुरुष के संयोग का ही परिणाम है। क्योंकि कोई भी छात्र सम्पूर्णतः परिपूर्ण नहीं होता है। उसका अपना एक सीमित दायरा है, क्योंकि वह छात्र इस प्रतिस्पर्धात्मक परीक्षा को अपने ममत्व से जोड़ लेता है, उसका अधिकांश समय सोचने-विचारने में जाता है। परिणामतः वह अपना सौ प्रतिशत नहीं दे पाता, जिसके परिणामस्वरूप उसका चित्त अस्थिर हो जाता है और जब भी वह दशा उसके सम्मुख आती है, तो उससे वह भागने का प्रयत्न करता है। ठीक इसी प्रकार दूसरा लौकिक उदाहरणों में से एक प्रेमी और प्रेमिका का उदाहरण

²³ पातंजल योगसूत्र— 2/8

अत्यन्त प्रचलित है। जब कोई प्रेमी अपनी प्रेमिका को वादा कर उसे अपने साथ चलने को कहता है, तब वह यह नहीं जानती कि प्रेमी द्वारा दिया गया वादा एक छल है, जो कि कभी भी पूरा नहीं होने वाला तथा उसके लिए यह वादा अत्यन्त दुःखदायी परिणामस्वरूप साबित होने वाला है, जिससे वह इस समय अनजान है और उस प्रेमी को अपने पति रूप में पाने के लिए उसके साथ चली जाती है, तब उसके लिए यह सम्पूर्ण दृश्य अत्यन्त मनोरम एवं सुखदायी प्रतीत होता है। किन्तु जब प्रेमी द्वारा किया गया वादा उस प्रेमिका के समक्ष वास्तविक रूप में साकार नहीं होता, तब उस प्रेमिका का चित्त अस्थिर हो जाता है, और वह किसी अन्य संगिनी जो कि उसकी पहली प्रेमिका से भी अत्यन्त सुन्दर थी, उसे छोड़कर उस संगिनी के पास जाता है। जो कि उसके लिए अत्यन्त दुःखदायी है, इस दुःख के मारे वह दुःखी हो जाती है और अब किसी अन्य व्यक्ति के द्वारा किये हुए वादे उसे सब झूठे प्रतीत होते हैं। वह प्रेमिका चाहती है, कि जिस व्यक्ति के द्वारा उसे विक्षोभ सहन करना पड़ा, वह उसके सामने कभी न आये। यही दुःख रूपी क्लेश द्वेष है।

अभिनिवेश

“स्वरसवाही विदुषोऽपि तथारूढोऽभिनिवेशः।”²⁴

जब मनुष्य के चित्त में पूर्व जन्म के मृत्यु रूपी संस्कार संग्रहित हो जाते हैं और जब वह मनुष्य दोबारा जन्म लेता है, तब उसके चित्त में पूर्व जन्म रूपी संस्कार भी समाहित हो जाते हैं, जो इस जन्म में मृत्यु रूपी भय का कारण बनते हैं। इस चराचर जगत में जीव, मनुष्य, विद्वान को मृत्यु का भय बना रहता है। जीव तथा मनुष्यों में विद्वानों को मृत्यु का भय थोड़ा आंशिक बना रहता है।

उदाहरणार्थ— लौकिक उदाहरणों में से एक लौकिक उदाहरण इस प्रकार है कि, एक समय जब कृष्ण तथा अर्जुन एक रास्ते पर जा रहे थे, तब उन्हें एक अधमरा हाथी दिखाई दिया, जो कि इतना रोगग्रस्त था, कि वह हाथी उठ ही नहीं पा रहा था और छोटी-छोटी लाल चीटियां उसके शरीर से मांस निकाल-निकाल कर खा रहीं थीं। हाथी अचेत अवस्था में कुछ भी नहीं कर पा रहा था। तब अर्जुन ने भगवान कृष्ण से कहा कि इस हाथी की ऐसी दशा का कारण

²⁴ पातंजल योगसूत्र- 2/9

क्या है? तब भगवान कृष्ण अर्जुन को सम्बोधित करते हुए कहते हैं, कि पिछले जन्म में ये हांथी मछुआरा था, जो कि तालाब से मछलियों को पकड़कर अपना शिकार बनाता था। यही मछली रूपी शिकार किये हुए मछुआरे का भोजन, जो कि इस जन्म में चीटियां हैं, और ये मछुआरा हाथी था। जन्म-मरण रूपी संस्कारों का ये चक्र अनादि काल से चला आ रहा है।

(ब) अक्लिष्ट वृत्ति

ऐसी वृत्ति जो बुद्धि तथा पुरुष के मिश्रित रूपों को अलग करती है। अक्लिष्ट वृत्ति कहलाती है। इसमें सत्त्व, रज तथा तम का समूल नाश होता है तथा योग मार्ग में सहायक सिद्ध होती है, अक्लिष्ट वृत्ति कहलाती है।

“कभी-कभी क्लिष्ट के गर्भ से अक्लिष्ट और अक्लिष्ट के गर्भ से क्लिष्ट वृत्ति का जन्म होता है, जैसे-कभी-कभी अतिशय, घृणित या दुःखदायक कर्मों के करने से वैराग्य का जन्म होता है, इसी प्रकार कभी ऐसा भी होता है, कि अक्लिष्ट कर्मों के करने से व्यक्ति राग की ओर उन्मुख हो जाता है, इसलिए साधक को वृत्ति के परिणाम पर दृष्टि रखनी चाहिए।”²⁵

इस विवेकख्याति से भी मोक्ष का एक ही उपाय है, निष्काम कर्म अर्थात् किसी कर्म में भी आशक्ति का न होना। इस निष्काम कर्म से वृत्ति संस्कार तथा संस्कार वृत्ति का चक्र चित्त में संग्रहित नहीं होता। जिसके फलस्वरूप वृत्ति रुक जाती है, और संस्कार कार्यरूप में परिणित नहीं हो पाते, और ये संस्कार दग्ध बीज के समान इनका पुनः प्रस्फुटन नहीं हो पाता।

ऐसी अवस्था जिसमें अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष तथा अभिनिवेश आदि क्लेशों से युक्त न हो अक्लेश युक्त अवस्था कहलाती है। जो कि अक्लिष्ट वृत्तियों को जन्म देती है, जिसके फलस्वरूप समस्त वृत्तियों का निरोध करने में सहायक होता है।

²⁵ प्रो०. शास्त्री, ज्ञानप्रकाश. प्रो०. भारद्वाज, ईश्वर. (2019). *महर्षि पतंजलिकृत योगसूत्र*. संस्करण. दिल्ली : परिमल पब्लिकेशन्स पृ. 14.

3.3.3 गुणों के आधार पर वृत्तियों का विभाजन

चित्त के अन्दर अनन्त वृत्तियाँ होती हैं, लेकिन गुणों के आधार पर मूलतः “तीन वृत्तियों का ही विभाजन है।”²⁶

(अ) सात्त्विक वृत्ति

(ब) राजसिक वृत्ति

(स) तामसिक वृत्ति

(अ) सात्त्विक वृत्ति

सात्त्विक वृत्ति निर्मल तथा प्रकाशक होती है, इसमें किसी भी प्रकार के विक्षेपों का मूलतः अभाव पाया जाता है। सात्त्विक प्रधान व्यक्ति का जीवन सरल, संयमित तथा अनुशासित होता है। ऐसा व्यक्ति विपरीत परिस्थितियों का सामना भी बड़ी सहजता एवं सरलता से करता है। सात्त्विकता से युक्त व्यक्ति हर वस्तु को अभेद की दृष्टि से देखता है। अर्थात् उसमें यथार्थ ज्ञान का अनुभव प्राप्त होता है। वह प्रकृति एवं पुरुष को तात्त्विक दृष्टि से भेद रूप में नहीं देखता तथा सात्त्विक विचारों को व्यवहार रूप में परिणित करना ही सात्त्विक वृत्ति की संज्ञा है।

(ब) राजसिक वृत्ति

रजस प्रधान व्यक्ति का गुण अत्यधिक चंचल प्रवृत्ति का होता है। इस तरह के व्यक्ति का चित्त विक्षेपो से युक्त रहता है। जो मोक्ष मार्ग में बाधक का काम करती है। रजस से युक्त व्यक्ति का मन लोभ, मोह तथा द्वेष से ग्रसित होता है। ऐसे व्यक्ति का जीवन संयमित नहीं रहता और न ही वह शांत प्रवृत्ति से युक्त होता है।

राजसिक भोजन में अम्ल, तिक्त, लवण की मात्रा का अत्यधिक उपयोग होता है तथा ऐसा भोजन व्यक्ति के राजसिक विचारों को अत्यधिक प्रभावित करता है। इन लोभ तथा मोह रूपी

²⁶ डॉ० श्रीवास्तव, सुरेशचन्द्र. (2018). *पातंजलयोगदर्शनम्* वाराणसी : चौखम्बा, सुरभारती प्रकाशन. पृ. 11.

विचारों का व्यवहार में अथवा चित्त के माध्यम से राग, द्वेष से युक्त संस्कारों का मन रूपी विचारों में व्यवहरिकृत होना राजसिक वृत्ति है।

(स) तामसिक वृत्ति

तमस जो कि मूढ़ता अर्थात् आलस्य एवं जड़ता का प्रतीक है। इस तरह के व्यक्ति का चित्त भी राजस के समान विक्षेपों से युक्त होता है, इस प्रकार के व्यक्ति आलस्य, जड़ता, भारीपन तथा प्रमाद के गुणों से सम्पन्न होते हैं। व्यक्ति की जीवन शैली असंयमित स्वभाव की होती है तथा इनका भोजन उच्छिष्ट (बासी) एवं तामसिक प्रवृत्ति से युक्त होता है।

तमस प्रधान व्यक्ति अधर्म, अज्ञान, अवैराग्य की ओर आरुढ़ होते हैं। इनका किसी भी वस्तु पर अधिकार धर्म पूर्वक नहीं होता और न ही इनका आचरण संगयुक्त होता है। ये अज्ञान के धरातल पर पूर्ण रूप से धँसते चले जाते हैं, जहाँ से इनका निर्गमन संभव ही नहीं है।

- (1) राजस या तामस अथवा सात्विक वृत्ति का निरोध
- (2) सात्विक और राजस वृत्ति का निरोध
- (3) तामसिक और सात्विक वृत्ति का निरोध
- (4) राजस और तामस वृत्ति का निरोध
- (5) सात्विक, राजस और तामस वृत्तियों का पूर्ण रूपेण निरोध

(1) राजस या तामस अथवा सात्विक वृत्ति का निरोध

यद्यपि यदि व्यवहृत धरातल पर इन तीनों वृत्तियों में से किसी एक वृत्ति का भी निरोध करें, तो राजस तथा तामसिक वृत्तियों का पूर्णरूपेण निरोध संभव ही नहीं है। जो मोक्ष प्राप्ति के मार्ग में बाधा से परिपूर्ण है।

(2) सात्विक और राजस वृत्ति का निरोध

सात्विक तथा राजसिक वृत्ति का निरोध भी योग की कोटि में नहीं आता। इन दो वृत्तियों के निरोध होने पर तम रूपी मल चित्त में विद्यमान रहते हैं। जो मोक्ष के मार्ग में विघ्न कारक होती है।

(3) तामसिक और सात्विक वृत्ति का निरोध

सात्विक तथा तामसिक वृत्ति का निरोध भी योग की कोटि में नहीं आता। यद्यपि इन दो वृत्तियों का यदि पूरणरूपेण निरोध हो भी जाता है, तो चित्त में राजसिक वृत्ति रूपी मल विक्षेप के रूप में रह जाते हैं, जो मोक्ष के मार्ग में क्लेश से पूर्णतः युक्त है अर्थात् विघ्नकारक है।

(4) राजस और तामस वृत्ति का निरोध

राजस तथा तामस वृत्तियों का निरोध भी योग की श्रेणी में आता है। जो एकाग्र अवस्था या सम्प्रज्ञात समाधि की अवस्था के अन्तर्गत आती है। क्योंकि इसमें वृत्ति की एक तारतम्यता का प्रवाह लगातार होता है। यह कर्म बन्धनों को शिथिल करती है तथा मिथ्या-ज्ञान के भेद का आवरण समाप्त करती है एवं असम्प्रज्ञात समाधि की ओर अग्रसर करती है।

(5) सात्विक, राजसिक तथा तामस का पूर्ण रूपेण निरोध

जब चित्त में सात्विक, राजसिक तथा तामस वृत्तियों का पूर्ण रूपेण क्षय हो जाता है, अर्थात् बीज रूप में कोई भी वृत्ति शेष नहीं बचती। हमारे चित्त में संस्कार-वृत्ति का चक्र चलता रहता है। जब उस संस्कार रूपी वृत्ति की अभिव्यक्ति पूर्णतः ही समाप्त कर दी जाती है। अर्थात् संस्कार वृत्ति के चक्र में से वृत्ति रूपी चक्र को सर्वथा के लिए अवरुद्ध कर दिया जाता है, तो संस्कार निष्क्रिय रूप से चित्त में संचित रहते हैं और उन निष्क्रिय संस्कारों की अभिव्यक्ति वृत्ति के रूप में सम्भव ही नहीं।

उदाहरणार्थः— यदि बीज की अंकुरण शक्ति को भुनाकर पूर्णरूपेण नष्ट कर दिया जाये तो उस बीज में अंकुरण की उत्पादक क्षमता पूर्ण रूप से नष्ट हो जायेगी। अर्थात् वृत्ति रूपी

संस्कार की अंकुरण क्षमता नष्ट हो जाती है, और उस बीज में संस्कार निर्बीज रूप में संचित रहते हैं।

3.3.4 वृत्तियों के प्रकार

“प्रमाणविपर्ययविकल्पनिद्रास्मृतयः।”²⁷

वृत्तियाँ पाँच प्रकार की होती हैं, जो कि इस प्रकार हैं।

- (1) प्रमाण
- (2) विपर्यय
- (3) विकल्प
- (4) निद्रा
- (5) स्मृति

(1) प्रमाण वृत्ति

“प्रत्यक्षानुमानागमाः प्रमाणानि।”²⁸

प्रमाण वृत्ति तीन प्रकार की होती है।

- (अ) प्रत्यक्ष प्रमाण
- (ब) अनुमान प्रमाण
- (स) आगम प्रमाण

²⁷ पातंजल योगसूत्र— 1/6

²⁸ पातंजल योगसूत्र— 1/7

(अ) प्रत्यक्ष प्रमाण

पंचज्ञानेन्द्रियाँ जब बाह्य विषयों से संयुक्त होती हैं। जैसे—चक्षु का रूप से, त्वक् का स्पर्श से, घ्राण का गन्ध से, जिह्वा का रसना से और श्रोत्र का ध्वनि से। “इसमें दो प्रकार के ज्ञान की प्रधानता होती है।”²⁹

सामान्य ज्ञान

विशेष ज्ञान

“इसमें मुख्यतः विशेष ज्ञान की प्रधानता होती है।”³⁰

उदाहरण के तौर पर एक व्यक्ति मनुष्य प्रजाति का होता है और एक पशु प्रजाति में गाय को ले लेते हैं और उस व्यक्ति को मनुष्य तथा गाय में फर्क करने को कहते हैं। तो वह अपने विशिष्ट ज्ञान के आधार पर मनुष्य तथा गाय में दोनों की अलग-अलग संज्ञा देता है। ठीक इसी तरह त्वचा से अच्छे तथा बुरे स्पर्श की संज्ञा विशिष्ट ज्ञान के आधार पर की जाती है। घ्राण से अच्छे तथा बुरे गंध की, जिह्वा से अच्छे तथा कड़वे रस की, श्रवण इन्द्रियों से मध्यम तथा उच्च ध्वनि के आधार पर इन समस्त ज्ञानेन्द्रियों के माध्यम से सामान्य से विशिष्ट में फर्क किया जाता है। जिसमें प्रधानता विशिष्ट ज्ञान की है। पंचज्ञानेन्द्रियों का संयोग यह दर्शाता है, कि व्यक्ति के अन्दर प्रकृति और पुरुष का सानिध्य है, जो अज्ञान के आवरण को दर्शाता है। परिणामतः चित्त में नई-नई वृत्तियों का जन्म होता है, और नये संस्कार भी जन्म लेते हैं। जिसके परिणामानुसार क्लिष्ट और अक्लिष्ट वृत्तियों का जन्म होता है। यदि पंचज्ञानेन्द्रियों के संयोग से व्यक्ति अगर भोग की ओर अग्रसर होता है, तो वो क्लिष्ट तथा इस संसार में पंचज्ञानेन्द्रियों के सन्निकर्ष से जो-जो भोगवत् वस्तुएँ प्राप्त होती हैं, उनसे वैराग्य का होना।

उदाहरणार्थ— बीमार शरीर को देखकर, उस शरीर से मोह-माया का हट जाना, ये अक्लिष्ट वृत्ति हैं।

²⁹ प्रो०. शास्त्री, ज्ञानप्रकाश. प्रो०. भारद्वाज, ईश्वर. (2019). *महर्षि पतंजलिकृत योगसूत्र*. संस्करण. दिल्ली : परिमल पब्लिकेशन्स पृ. 20.

³⁰ प्रो०. शास्त्री, ज्ञानप्रकाश. प्रो०. भारद्वाज, ईश्वर. (2019). *महर्षि पतंजलिकृत योगसूत्र*. संस्करण. दिल्ली : परिमल पब्लिकेशन्स पृ. 20.

(ब) अनुमान प्रमाण

किसी वस्तु का ज्ञान वास्तविक कयास या अनुभव पर न होकर केवल पूर्व अनुमान के आधार पर होता है। उसे “अनुमान प्रमाण” की संज्ञा दी जाती है।

उदाहरणार्थ— तटीय क्षेत्रों में बसे लोगों द्वारा सुनामी लहर को देखकर अत्यधिक वर्षा का अनुमान लगाना।

अनुमान प्रमाण का क्लिष्ट स्वरूप

व्यक्ति जब मंदिर में अपनी चित्त शुद्धि के लिए जाता है अथवा मन में उठ रहे द्वन्द्वों को शांत करने के लिए मंदिर जाता है और जब उसका ध्यान ईश्वर में मग्न हो जाता है, तो पास से गुजर रही स्त्री के चूड़ियों की आवाज़ उसके कानों में सुनाई देती है। तो व्यक्ति यह अनुमान लगाता है, कि अवश्य ही कोई स्त्री यहां से गुजर कर गई है, जो उस व्यक्ति की ईश्वर के प्रति उपासना को भंग कर देता है। और उसका चित्त उस स्त्री में ही विचरण करने लगता है।

अनुमान प्रमाण का अक्लिष्ट स्वरूप

ठीक इसी तरह जब व्यक्ति का चित्त भगवान की उपासना में लग जाता है। जब वैदिक मंत्र के स्वर उसके कानों में गूंजते हैं। तब वह यह अनुमान लगाता है, कि मंदिर में कहीं वैदिक कर्म—काण्ड तथा विशेष प्रकार के मंत्रों का उच्चारण हो रहा है, तो उसका मन उन कर्मकाण्डों की ओर अग्रसर होता है। जिसे अनुमान प्रमाण का अक्लिष्ट स्वरूप कहते हैं।

(स) आगम प्रमाण

इसमें दो प्रकार के प्रमाण होते हैं। प्रत्यक्ष तथा अनुमान।

आप्त ऋषियों के माध्यम से प्रत्यक्ष प्रमाण द्वारा जाना गया तथा अनुमानित किया गया प्रमाण, इन्ही दोनों आधारों पर किसी अन्य व्यक्ति को शब्द के माध्यम से ज्ञान कराने की प्रक्रिया आगम प्रमाण कहलाती है।

आगम प्रमाण का क्लिष्ट स्वरूप

आप्त पुरुष द्वारा दिये गये निर्दिष्ट वचनों का जिज्ञासु व्यक्ति द्वारा वचन के भावों का ठीक प्रकार से ग्रहण न करना, क्लिष्ट वृत्ति का स्वरूप है। जो कि योग साधना के मार्ग में बाधा का काम करती है।

आगम प्रमाण का अक्लिष्ट स्वरूप

आप्त वचनों का जिज्ञासु व्यक्ति के द्वारा सही तरीके से ग्रहण करने की प्रक्रिया और उन वचनों का मूल रूप में सही अर्थ समझना, जो उस व्यक्ति को योग मार्ग में आगे बढ़ने में सहायक सिद्ध होती है, अक्लिष्ट वृत्ति कहलाती है।

(2) विपर्यय वृत्ति—

“विपर्ययो मिथ्याज्ञानमतद्रूपप्रतिष्ठम्।”³¹

किसी व्यक्ति के द्वारा ऐसा ज्ञान जो उसके लिए यथार्थ था। परन्तु प्रमाण वृत्ति के द्वारा उस व्यक्ति के यथार्थ ज्ञान को बाधित कर दिया जाता है। ऐसी वृत्ति विपर्यय के अंतर्गत आती है। ये अविद्यादि क्लेशों से युक्त होती है।

उदाहरणार्थ— रस्सी में सर्प की प्रतीति।

विपर्यय वृत्ति का क्लिष्ट स्वरूप

यदि व्यक्ति रस्सी में सर्प का अनुभव करता है, तो वह डर और आशंका के कारण अन्दर ही अन्दर परेशान होता रहता है। जिसके परिणामतः उसके अन्दर डर के कारण विभिन्न प्रकार की वृत्तियाँ जन्म लेती हैं और वह व्यक्ति उस सर्प के भय से हजार मौतें मरता है, जो क्लिष्ट वृत्ति का स्वरूप है।

³¹ पातंजल योगसूत्र— 1/8

विपर्यय वृत्ति का अकिलष्ट स्वरूप

जब कोई व्यक्ति अपनी आस्था से मंदिर में भगवान के दर्शन के लिए जाता है। जबकि उस मंदिर में बसे भगवान के अन्दर कोई जान ही नहीं होती, तो मंदिर में बसे भगवान मिथ्या ज्ञान अथवा विपर्यय ज्ञान का ही स्वरूप हैं, जो व्यक्ति में अकिलष्ट वृत्ति को जन्म देती है। जिसके परिणामस्वरूप व्यक्ति का मन शांत व शुद्ध होता है।

(3) विकल्प वृत्ति

“शब्दज्ञानानुपाती वस्तुशून्यो विकल्पः।”³²

किसी अन्य व्यक्ति के द्वारा कहे गये वचनों के शब्दों को अनुशरण में लाना, किन्तु उसका वास्तविक अर्थों में प्रयोग होता ही नहीं है, विकल्प वृत्ति कहलाती है।

उदाहरणार्थ— शेर के ऊपर सींग का पाया जाना, जो कि वास्तविकता में होता ही नहीं है।

विकल्प वृत्ति का किलष्ट स्वरूप

व्यक्ति के मन में उत्पन्न कल्पनाएँ, जो कि वास्तविक धरातल पर होती ही नहीं है, कि मैं अमुक ऐश्वर्यों का स्वामी बन जाऊँगा, मैं सम्पूर्ण पृथ्वीलोक पर राज्य करूँगा। इस प्रकार की वृत्ति किलष्ट स्वरूप वाली होती है।

विकल्प वृत्ति का अकिलष्ट स्वरूप

व्यक्ति के मन में उत्पन्न ऐसी कल्पनाएँ, जो व्यक्ति के मन के भावों को विक्षिप्त नहीं करती, विकल्प वृत्ति का अकिलष्ट स्वरूप कहलाती हैं। व्यक्ति के मन में ईश्वर के लिए ऐसी कल्पनाएँ जो उसके लिए घातक नहीं बल्कि वरदान स्वरूप होती हैं। अकिलष्ट स्वरूप स्वरूप का द्योतक है।

³² पातंजल योगसूत्र— 1/9

(4) निद्रा वृत्ति

“अभावप्रत्ययालम्बना वृत्तिर्निद्रा।”³³

व्यक्ति जाग्रतावस्था में अपने चारों ओर का ज्ञान पंचज्ञानेन्द्रियों तथा मन के माध्यम से अनुभव करता है तथा जब मन स्वप्नावस्था में होता है, तो उसमें केवल मन ही कार्य करता है। अर्थात् पंचज्ञानेन्द्रियों तथा मन का भी निद्रा में पूर्णतः अभाव हो जाना निद्रा वृत्ति के अंतर्गत आता है। इसे प्रगाढ़ निद्रा की अवस्था भी कही जाती है।

निद्रा वृत्ति का क्लिष्ट स्वरूप

(अ) निद्रा वृत्ति का सात्विक स्वरूप

जब व्यक्ति का चित्त सात्विक व शुद्ध हो तो तथा वह कहे की मैं सुखपूर्वक सोया ऐसी वृत्ति निद्रा की सात्विक वृत्ति के अन्तर्गत आती है।

(ब) निद्रा वृत्ति का राजसिक स्वरूप

जब व्यक्ति सोकर उठने के उपरांत कहता है, कि मैं दुःख पूर्वक सोया, मेरा मन काम में नहीं लगता, मेरा मन जकड़ा-जकड़ा सा लगता है। ऐसी वृत्ति निद्रा वृत्ति की राजसिक वृत्ति कहलाती है।

(स) निद्रा वृत्ति का तामसिक स्वरूप

जब व्यक्ति सोकर उठने के बाद उसे ऐसा प्रतीत हो कि ठीक प्रकार से नहीं सोया, मेरे अंग भारी हैं, तो इस प्रकार की वृत्ति तामसिक वृत्ति के अन्तर्गत आती है।

इस प्रकार की ये तीनों सात्विक, राजसिक तथा तामसिक निद्रा वृत्ति क्लिष्ट वृत्ति के अंतर्गत आती है। जो योग मार्ग में बाधा का कार्य करती हैं।

³³ पातंजल योगसूत्र— 1/10

निद्रा वृत्ति का अक्लिष्ट स्वरूप

ऐसी निद्रा वृत्ति जो हमें समाधि की ओर अग्रसर करे अक्लिष्ट के अंतर्गत आती है।

(5) स्मृति वृत्ति—

“अनुभूतविषयासम्प्रमोषः स्मृतिः।”³⁴

“जाग्रत तथा स्वप्न अवस्था में अनुभव किये हुए विषयों का न भूलना स्मृति वृत्ति के अन्तर्गत आता है।”³⁵

उदाहरणार्थ— जब किसी व्यक्ति के द्वारा मिठाई ग्रहण की जाती है, तो उस मिठाई के अनुभव किये हुए संस्कार उसके चित्त में संग्रहित हो जाते हैं, फिर वह व्यक्ति जब भूतकाल में ग्रहण की गई मिठाई के बारे में सोचता है, तो उस पूर्वकाल में ग्रहण की हुई मिठाई के संस्कार जो उसके चित्त में संग्रहित थे, स्मृति रूप में अनुभव के धरातल पर उस व्यक्ति के सामने प्रकट हो जाते हैं।

ठीक इसी प्रकार जब हम कोई पाठ याद करते हैं, तो उस पाठ के याद किये हुए संस्कार हमारे स्मृति में संग्रहित हो जाते हैं तथा जब हम इसे दुबारा याद करने की कोशिश करते हैं, तो वो याद किया हुआ भाग भी स्मृति वृत्ति के अन्तर्गत आता है।

“स्मृति वृत्ति दो प्रकार की होती है।”³⁶

(अ) भावित स्मृति

(ब) अभावित स्मृति

³⁴ पातंजल योगसूत्र— 1/11

³⁵ डॉ० कुमार, हरीश. (2020). *योग-सिद्धान्त संग्रह*, गाजियाबाद : राधाप्रेस, पृ. 119.

³⁶ आर्य, सतीश. (2016). *पातंजल योगदर्शन (व्यासभाष्य एवं भोजवृत्ति सहित)*, दिल्ली : परिमल पब्लिकेशन पृ. 75.

(अ) भावित स्मृति

भावित का अर्थ होता है, बनाना। जिसका तात्पर्य स्मृतियों को कल्पनाओं के माध्यम से हम हर कुछ गढ़ देते हैं। जिसमें सत्य की प्रमाणिकता का आधार न के बराबर होता है और ये सब कुछ स्वप्नावस्था में कल्पित की हुई चीजों के माध्यम से ही संभव होता है।

(ब) अभावित स्मृति

अभावित का तात्पर्य न बनाना है। अर्थात् जिसमें व्यक्ति के द्वारा कल्पनाएँ नहीं की जाती। वास्तविक घटनाएँ जो घटित होती हैं, व्यक्ति उन्हीं वास्तविक घटनाओं के आधार पर विचार करता है।

उदाहरणार्थ— जाग्रतावस्था।

स्मृति वृत्ति का क्लिष्ट स्वरूप

जब व्यक्ति अपने मन में अभिलाषित मनोकामनाओं की पूर्ति के लिए भगवान के मंदिर में जाता है, तब उसकी इच्छा सांसारिक भोगों से युक्त होती है। जिससे उसके चित्त में समाहित इच्छाएँ स्मृति वृत्ति के रूप में उभरने लगती हैं और ये स्मृति वृत्ति का क्लिष्ट स्वरूप है। जो कि सांसारिक बन्धनों और इच्छाओं से युक्त है।

स्मृति वृत्ति का अक्लिष्ट स्वरूप

जब व्यक्ति बिना किसी आशा के मंदिर में भगवान के दर्शन करने जाता है। तब वह उत्साह से युक्त हो जाता है और उसी आनन्द को स्मृति वृत्ति के माध्यम से याद कर आनंदित हो उठता है। उसका मन सात्विकता से भर जाता है। फिर वह व्यक्ति योग की ओर अग्रसर होता है। इस प्रकार की वृत्ति अक्लिष्ट स्वरूप वाली होती है।

3.3.5 क्लेशों का कारण

“क्लेशमूलः कर्माशयो दृष्टादृष्टजन्मवेदनीयः।”³⁷

अविद्या रूपी क्लेशों का आशय दो भावों में निहित है।

“पुण्य तथा पाप रूप”³⁸

पाप रूप

पुण्य रूप

जब व्यक्ति अपने स्वार्थ पूर्ति के लिए पाप कर्म से युक्त कर्म करता है, तो इन कर्मों के संस्कार चित्त में संग्रहित हो जाते हैं, तब पाप रूपी कर्मों का समूह या आशय जिसके मूल अर्थात् चित्त में क्लेश बने हुए हैं। उसी कर्मों के समूहों के अनुसार व्यक्ति को इस जन्म या अगले जन्म में कर्म रूपी फल प्राप्त होते हैं। ठीक इसी प्रकार पुण्य रूपी फल, जो कि क्लेशों से युक्त है, जो कि सांसारिक कामनाओं से संयुक्त है, वे भी इस जन्म अथवा अगले जन्म में फल के रूप में प्राप्त होते हैं।

उदाहरण के तौर पर कोई व्यक्ति किसी प्राणी को अनावश्यक रूप से कष्ट देता है, तो उस व्यक्ति को पाप रूपी कर्मों का फल इस जन्म या अगले जन्म में भोगना ही पड़ता है, तथा दूसरा कर्म जो कि पुण्य रूप से युक्त होता है। ये पुण्य रूप कर्म क्लेशों से युक्त होते हैं। यदि कोई व्यक्ति दान-पुण्य करता है और उसके पीछे सांसारिक पुण्य की आशा रहती है, तो इस पुण्यरूपी कर्म को भोगने के लिए इस जन्म या अगले जन्म में पुण्य रूपी फल जो कि अविद्या आदि क्लेशों से युक्त है, भोगना ही पड़ता है।

³⁷ पातंजलयोग सूत्र- 2/12

³⁸ आर्य, सतीश. (2016). *पातंजल योगदर्शन (व्यासभाष्य एवं भोजवृत्ति सहित)*. दिल्ली : परिमल पब्लिकेशन पृ. 290

3.3.6 कर्माशय का परिणाम

“सति मूले तद्विपाको जात्यायुर्भोगाः।”³⁹

अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष, अभिनिवेश ये मूल क्लेश हैं। जो हमारे चित्त में संग्रहित रहते हैं। अविद्या रूपी मूल अर्थात् क्लेश रूपी मूल का जो फल है, वो मुख्यतः तीन प्रकार के होते हैं। जाति, आयु, भोग।

(1) जाति

जाति का तात्पर्य “जन्म”⁴⁰ से है। अर्थात् व्यक्ति को नया जन्म उसके पूर्वजन्म के अनुसार ही मिलता है। अगर व्यक्ति परिणाम की आशा से अच्छे कर्म करता है, तो उसे इस जन्म में मनुष्य की योनि प्राप्त होती है और यदि पूर्व जन्म में पाप रूपी कर्म किये हैं, तो व्यक्ति को इस जन्म में पशु, पक्षी या मनुष्य का शरीर प्राप्त होता है। परन्तु यदि अपुण्य कर्मों के अनुसार उसे इस जन्म में मनुष्य योनि प्राप्त हुई, तो वह मनुष्य योनि पूर्व जन्मों के कृतकारित कर्मों के अनुसार इस जन्म में उस व्यक्ति को दुःख से युक्त जीवन बिताना होता है।

(2) आयु

आयु का तात्पर्य अवस्था से है, यानि आपका शरीर कैसा है। आप कितने वर्ष तक जियोगे। कुछ व्यक्तियों की अवस्था बहुत अच्छी होती है, जो कि उनके पूर्व जन्मों के परिणामानुसार होती है। ऐसे व्यक्तियों की आयु बहुत अच्छी मानी जाती है, किन्तु अधिकांशतः व्यक्ति ऐसे होते हैं, जिनका शरीर अत्यंत दयनीय एवं अस्वस्थ होता है, जो कि उस व्यक्ति के पूर्व जन्मों का परिणाम है। जो वे आज इस जन्म में भोग रहे हैं।

(3) भोग

भोग का मतलब आपके साधनों अथवा संसाधनों से है। व्यक्ति के इस जन्म का परिवेश, उसका परिवारिक माहौल, समाज का वातावरण उसके पूर्व जन्मों के अर्जित कर्मों का फल इस

³⁹ पातंजलयोग सूत्र- 2/13

⁴⁰ आर्य, सतीश. (2016). *पातंजल योगदर्शन (व्यासभाष्य एवं भोजवृत्ति सहित)*. दिल्ली : परिमल पब्लिकेशन पृ. 295.

जन्म में भोग रहा है, जो कि पुण्य कर्मों पर आधारित है। मनुष्य के दुष्कृत कर्मों के भोग की दशा का परिणाम उसके पिछले जन्म पर आधारित है। जिसके परिणामतः उस व्यक्ति को इस जन्म में अच्छा परिवारिक माहौल तथा अच्छे मित्रों का संग नहीं मिल पाता और सामाजिक वातावरण से वह व्यक्ति कटा-कटा सा रहता है। जो उसके चित्त की अस्थिर दशा का परिणाम है।

इन तीनों चीजों अर्थात् जाति, आयु तथा भोग का निर्धारण उसके पूर्व जन्म के आधार पर इस जन्म में होता है। यद्यपि क्लेशों को नष्ट करने का एक उपाय यह भी है, कि जब व्यक्ति द्वारा कर्म किया गया और उन कर्मों के अनुसार कर्म का आशय यानि समूह बना तो योगी व्यक्ति द्वारा प्रयत्न करने पर उन क्लेशों को नष्ट कर दिया। क्लेशों का पूर्णतः नष्टीकरण होने पर उन अविद्या रूपी क्लेशों का विपाक अथवा फल नहीं बन पायेगा जिसके परिणामतः जाति अर्थात् जन्म, आयु तथा भोग रूपी शरीर का निर्माण नहीं होगा

जाति, आयु, भोग का परिणाम

“ते हलादपरितापफलाः पुण्यापुण्यहेतुत्वात्।”⁴¹

ते का तात्पर्य पूर्व सूत्र में जाति, आयु तथा भोग से है। जाति, आयु तथा भोग फल के अनुरूप ही पुण्य तथा अपुण्य कर्मों की प्राप्ति होती है।

“हलाद का तात्पर्य प्रसन्नता से तथा परिताप का तात्पर्य दुःख से है।”⁴²

मनुष्य के चित्त में अविद्या रूपी मूलक निवास करते हैं, जो कि हेतु की दृष्टि से पुण्य जुड़ा है, तो वो सुख देने वाले अर्थात् हलाद और ठीक इसी तरह अपुण्य से जुड़ा हुआ है, तो दुःख देने वाले अर्थात् परिताप यानि दुःखरूपी होते हैं। क्लेश में अच्छे तथा बुरे दोनों ही कर्मों का समावेश होता है।

अर्थात् जैसे हम किसी निर्धन की मदद करते हैं, तो बहुत से व्यक्ति ये चाहते हैं, कि मैंने निर्धन व्यक्ति के लिए उपकार किया, तो बदले में व्यक्ति चाहता है, कि उसका इस जगत में

⁴¹ पातंजलयोग सूत्र- 2/14

⁴² आर्य, सतीश. (2016). *पातंजल योगदर्शन (व्यासभाष्य एवं भोजवृत्ति सहित)*. दिल्ली : परिमल पब्लिकेशन पृ. 305.

नाम हो, तो ये फल पुण्यकारक हुआ, परन्तु एक दृष्टि से बंधन कारक भी है। क्योंकि उसे इस फल रूपी पुण्य के कारण पुनः जन्म लेना पड़ता है और अच्छे शरीर को धारण करता है। ठीक इसके विपरीत यदि कोई व्यक्ति किसी अच्छे व्यक्ति के साथ बुरा करता है, तो जाति, आयु, भोग के अनुसार उसे दुःख की प्राप्ति होगी तथा साथ ही साथ अगले जन्म में उसे एक दुःखमय रूपी शरीर प्राप्त होगा। जिसके परिणामतः उसे अनेक प्रकार के दुःखों का भोग करना पड़ेगा।

उदाहरणार्थ— यदि किसी व्यक्ति ने एक अच्छे परिवार में जन्म लिया, और उस परिवार में उसे किसी भी प्रकार की समस्या का सामना नहीं करना पड़ता। उस व्यक्ति के विचार सात्विक हैं, जिससे यह आशय निकाला जा सकता है, कि उस व्यक्ति का पूर्व जन्म पुण्य कर्मों से अर्जित था। जिसके अनुसार उसे इस जन्म में अच्छा परिवार, अच्छा माहौल तथा अच्छा वातावरण मिला।

ठीक इसके विपरीत यदि व्यक्ति के जीवन में अत्यंत दुःख है, तथा उसे एक समय खाने के लिए भी संघर्ष करना पड़ता है। तो उस व्यक्ति का शरीर रोगों से युक्त है। उसके परिवार का माहौल तथा आस-पास का वातावरण अप्रिय तथा अशांत है। तो इससे यह परिणाम निकाला जा सकता है, कि उस व्यक्ति का पूर्व जन्म अपुण्य से ग्रसित था।

जाति, आयु तथा भोग के अनुसार दुःख की उत्पत्ति

“परिणामतापसंस्कारदुःखैर्गुणवृत्तिविरोधाच्च दुःखमेव सर्वं विवेकिनः।”⁴³

“परिणामदुःख, तापदुःख और संस्कारदुःख तथा गुणवृत्तियों (सत्त्व, रजस् और तमस्) में परस्पर विरोध होने से विवेकी के लिए सब कुछ दुःख रूपी ही है।”⁴⁴

⁴³ पातंजलयोग सूत्र— 2/15

⁴⁴ प्रो०. शास्त्री, ज्ञानप्रकाश. प्रो०. भारद्वाज, ईश्वर. (2019). *महर्षि पतंजलिकृत योगसूत्र*. संस्करण. दिल्ली : परिमल पब्लिकेशन्स पृ. 242.

(अ) परिणाम दुःख

परिणाम का तात्पर्य बदलाव या परिवर्तन से है। इस दुःख में एक स्तर तक तो सुख होता है, परन्तु एक स्तर के बाद वही चीज़ दुःख में परिणित हो जाती है। इसे परिणाम दुःख की संज्ञा दी गई है।

उदाहरणार्थ— मनुष्य एक स्तर तक ही मिठाई का सेवन करता है, परन्तु यदि वही चीज़ बार-बार खाई जाये तो उस मिठाई से व्यक्ति उब जाता है। ऐसे ही भोग की दृष्टि से है।

(ब) ताप दुःख

व्यक्ति जैसे घर को बनाने में सुख रूपी साधनों तथा दुःख रूपी साधनों के सम्पर्क में आता है। उसके घर बनाने के रास्ते में जो भी सुख रूपी साधन या अनुकूल परिस्थितियाँ हैं, वे साधन उसके लिए अनुकूल हैं तथा जो साधन उसे घर बनाने में कष्टदायी है या उन साधनों की ठीक प्रकार से पूर्ति नहीं हो पा रही है। अर्थात् ऐसे विपरीत साधन जो मनुष्य के मार्ग में निरन्तर उसे तप्त करते रहते हैं। उसे ताप दुःख कहते हैं।

(स) संस्कार दुःख

जब व्यक्ति किसी अप्रिय घटना से गुजरता है और वही दुःख रूपी संस्कार व्यक्ति के चित्त में समाहित हो जाते हैं। तो फिर उन्हीं संस्कारों की पुनरावृत्ति हमारे दुःख का कारण है जिन्हें संस्कार दुःख कहते हैं।

(द) गुणवृत्तिविरोध दुःख

चित्त सत्व, रजस तथा तमस का संगम है। ये तीनों आपस में विरोधी गुण वाले होते हैं, परन्तु प्रधानता रज एवं तम की होती है। रज एवं तम, सत्व को दबाकर बलशाली हो जाते हैं और अलग-अलग वृत्ति विरोध के कारण अपना प्रभाव दर्शाते हैं। संस्कार के भौतिक पदार्थ भी रज एवं तम को दर्शाते हैं और व्यक्ति जो कि भौतिकता से परिपूर्ण है। अपने ही समान व्यक्ति के रज एवं तम वाले गुणों को आकर्षित करते हैं।

तो इन चारों दुःखों के कारण विवेक से युक्त व्यक्ति को यह संसार कष्टमय प्रतीत होता है।

चतुर्थ अध्याय

चित्त वृत्ति निरोध की अवधारणा

- 4.1 चित्त वृत्ति निरोध
- 4.2 चित्त के विक्षेप
- 4.3 चित्त वृत्ति निरोध के उपाय
- 4.4 चित्त वृत्ति निरोध का परिणाम

4 चित्त वृत्ति निरोध की अवधारणा

4.1 चित्त वृत्ति निरोध

चित्त जब वृत्तियों से युक्त होता है। तब मनुष्य के चित्त की वृत्तियाँ अपने स्वरूप को बंधन में महसूस करती है अर्थात् जब चित्त में क्रोध उत्पन्न होगा तब आत्मा वैसे ही स्वरूप वाला अनुभव करेगी। तब दृष्टा, वृत्तियों से अपना अलग स्वरूप नहीं बन पायेगी। सत्त्व, रज तथा तम से युक्त वृत्तियाँ मनुष्य को संसारिक बंधन में डालती है।

अतः इनके निरोध में मनुष्य को अक्लिष्ट वृत्तियों का भी निरोध कर देना चाहिए।

4.2 चित्त के विक्षेप

“व्याधिस्त्यानसंशयप्रमादालस्याविरतिभ्रान्तिदर्शनालब्ध-
भूमिकत्वानवस्थितत्वानि चित्तविक्षेपास्तेऽन्तरायाः।”¹

व्याधि

(1) त्रिदोषों (वात, पित्त, कफ) तथा रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा, शुक्र इन सप्त धातुओं में विकार उत्पन्न होना।

(2) रसों का अर्थात् जो भोजन तथा जल मनुष्य द्वारा ग्रहण किया जाता है, उसका ठीक प्रकार से परिपाक न होने के कारण विकार की अवस्था को प्राप्त होना।

(3) इंद्रियों में विकलता होना।

मुख्यतः इन तीनों लक्षणों की विकृति के परिणामस्वरूप व्याधि उत्पन्न होती है।

स्त्यान— व्यक्ति विशेष द्वारा समाधि को प्राप्त कराने वाले जो भी साधन हैं, उसमें उसका मन न लगना।

संशय— दो प्रतिकूल विरोधात्मक ज्ञान का बने रहना।

प्रमाद— समाधि प्राप्त कराने वाले जो भी साधन हैं, उसमें उसका पूर्णतः मनोयोग न होना।

¹ पातंजल योगसूत्र— 1/30

आलस्य— तमोगुण की अधिकता के कारण समाधि की ओर अग्रसर न हो पाना।

अविरति— सांसारिक भोग—विलास के साधनों की ओर प्रवृत्त होना।

मिथ्या ज्ञान— अध्यारोप की स्थिति।

अलब्धभूमिकत्व— समाधि की प्राप्ति न हो पाना।

अनवस्थितत्व— साधक द्वारा समाधि की प्राप्ति होने पर भी चित्त का थोड़ा चंचल अथवा अस्थिर बने रहना। ये चित्त के विक्षेप हैं।

चित्त के उपविक्षेप या सहभुव

“दुःखदौर्मनस्याङ्गमेजयत्वश्वासप्रश्वासा विक्षेपसहभुवः।”²

दुःख— “ये तीन प्रकार के होते हैं।”³

(1) आध्यात्मिक दुःख

(2) आधिभौतिक दुःख

(3) आधिदैविक दुःख

(1) आध्यात्मिक दुःख— ऐसे दुःख जो मनुष्य द्वारा (अर्थात् मन से शरीर में तथा शरीर से मन में) उत्पन्न किये जाते हैं।

(2) आधिभौतिक दुःख— जो भूतो के द्वारा उत्पन्न होते हैं।

(3) आधिदैविक— जो दैविय प्रकोप द्वारा उत्पन्न होते हैं।

दौर्मनस्य— इच्छा में बाधा उत्पन्न होने पर चित्त की अस्थिरता की दशा।

² पातंजल योगसूत्र— 1/31

³ गोयन्दका, हरिकृष्णदास. *महर्षि पतंजलि कृत योगदर्शन (योगसूत्र)*. 37वाँ पुनर्मुद्रण. गोरखपुर : गीताप्रेस. पृ. 30.

अंगमेजयत्व— अंगों में थरथराहट का होना।

श्वास— वायु का आंतरिक प्रवेश।

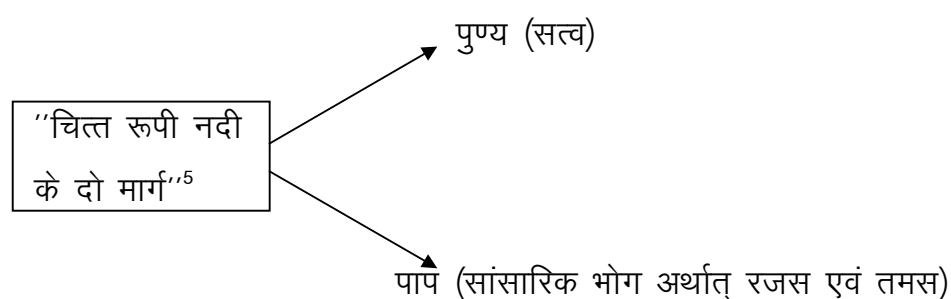
प्रश्वास— वायु का शरीर से बहिर्गमन।

4.3 चित्त वृत्ति निरोध के उपाय

4.3.1 अभ्यास एवं वैराग्य

“अभ्यासवैराग्याभ्यां तन्निरोधः।”⁴

चित्त रूपी नदी दो मार्गों में प्रशस्त होती है, पवित्र या पुण्य कर्म की ओर तथा दूसरी अपकर्म (पाप) की ओर प्रशस्त होती है।



चित्त रूपी नदी की दूसरी धारा जो पाप अर्थात् सांसारिक भोगों का मन्तव्य राजस एवं तामस युक्त धारा से है। मनुष्य के चित्त में त्रिगुणों का प्रभाव जिसमें मुख्यतः रजस तथा तमस का प्रकटीकरण बहुत ही प्रभावी होता है। मनुष्य के चित्त में जैसी वृत्ति का प्रतिबिम्ब उठता है, प्रकृति उन्हीं वृत्ति के अनुरूप चित्त को आकर्षित करती है। व्यक्ति मुख्यतः दो प्रकार के सुखों की ओर आकर्षित होता है।

(अ) पारमार्थिक सुख

(ब) सांसारिक सुख

⁴ पातंजल योगसूत्र— 1/12

⁵ आर्य, सतीश. (2016). *पातंजल योगदर्शन (व्यासभाष्य एवं भोजवृत्ति सहित)*. दिल्ली : परिमल पब्लिकेशन पृ. 77.

(अ) पारमार्थिक सुख

सत्त्व की अधिकता होने पर मनुष्य स्वतः ही ईश्वर अथवा परमात्मा की ओर उन्मुख हो जाता है। इसमें रज एवं तम का लेश मात्र भी प्रकटीकरण नहीं होता। जब शुद्ध चेतन से युक्त व्यक्ति कि आत्मा परमात्मा में विलीन हो जाती है, तब सत्त्व का प्रकटीकरण स्वतः ही समाप्त हो जाता है।

(ब) सांसारिक सुख

सांसारिक सुख जो पाप से आवृत्त रहती है, जो कि रज एवं तम का द्योतक है। मनुष्य का चित्त रज एवं तम से आवृत्त होने के कारण प्रकृति उसी के अनुरूप गुणों (रज एवं तम) को अपनी ओर आकर्षित करती है, जिसके फलस्वरूप प्रकृति रूपी सांसारिकता से युक्त उपलब्ध साधनों का उपभोग मनुष्य को कराती है। जिसमें कई प्रकार के कृत्य—कारित कर्म भी सम्मिलित होते हैं। कृत्य—कारित कर्म अथवा अपुण्य से युक्त सांसारिक भोगों को जो मनुष्य को सांसारिक सुख की ओर ले जाते हैं, जिसमें पारमार्थिक का एक अंश भी निहित नहीं होता, चित्त का बाह्य विषयों की ओर जाने वाला मार्ग वैराग्य द्वारा अवरुद्ध किया जाता है।

अभिप्राय यह है, कि जब चित्त रूपी नदी का सांसारिक मार्ग अवरुद्ध करके ईश्वर की ओर प्रशस्त किया जाता है, जो कि अत्यन्त जटिल प्रक्रिया है, जिसमें व्यक्ति का चित्त ईश्वर से हटकर संसार की ओर बार—बार उन्मुख होता है, इसमें सतत् अभ्यास की आवश्यकता होती है, पारमार्थिकता का यह मार्ग मोक्ष की ओर ले जाता है, जो सतत् अभ्यास के द्वारा ही संभव है।

चित्त वृत्ति निरोध में अभ्यास का प्रतिपादन

“तत्र स्थितौ यत्नोऽभ्यासः।”⁶

तत्र से तात्पर्य पहले सूत्र में प्रतिपादित “अभ्यासवैराग्याभ्यां तन्निरोधः”⁷ में अभ्यास और वैराग्य से है।

अर्थात् “अभ्यास तथा वैराग्य में चित्त को स्थिर करने के लिए जो प्रयत्न किया जाता है, उसे अभ्यास कहते हैं।”⁸

“चित्तस्यावृत्तिकस्य प्रशान्तवाहिता स्थितिः।”⁹

जब चित्त रजस एवं तमस से अयुक्त रहता है। अथवा चित्त से राजस एवं तामस रूपी वृत्तियों को हटा दिया जाता है, तब चित्त प्रशान्त वाहिता स्थिति को प्राप्त होता है। तथा इस स्थिति को प्राप्त करने के लिए जो प्रयत्न किया जाता है, उसे ही अभ्यास कहा जाता है।

प्रशान्त वाहिता से तात्पर्य चित्त का सम स्थिति में बने रहना अर्थात् सत्त्व की दशा या दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है, कि चित्त का सत्त्व स्थिति में बने रहने के लिए, जो प्रयास किया जाता है। उसे अभ्यास कहते हैं।

अभ्यास की दृढ़ता का उपाय

“स तु दीर्घकालनैरन्तर्यसत्काराऽऽसोवितो दृढभूमिः।”¹⁰

सामान्यतः संसार से रज एवं तम रूपी विकार अविमुख होकर ईश्वर की ओर अथवा परमात्मा की ओर उन्मुख वैराग्य द्वारा होता है। जिसके परिणामस्वरूप विवेक ज्ञान की ओर

⁶ पातंजल योगसूत्र- 1/13

⁷ पातंजल योगसूत्र- 1/12

⁸ आर्य, सतीश. (2016). *पातंजल योगदर्शन (व्यासभाष्य एवं भोजवृत्ति सहित)*. दिल्ली : परिमल पब्लिकेशन पृ. 79.

⁹ आर्य, सतीश. (2016). *पातंजल योगदर्शन (व्यासभाष्य एवं भोजवृत्ति सहित)*. दिल्ली : परिमल पब्लिकेशन पृ. 79.

¹⁰ पातंजलयोग सूत्र- 1/14

मार्ग स्वतः ही खुल जाता है, जिसमें सतत् अभ्यास की आवश्यकता होती है और अभ्यास की निरन्तर सतत् धारा “योगमार्ग में रहने वाले पथिकों” के लिए है।¹¹

यह अभ्यास लंबे समय तक तथा इसमें निरन्तरता बनाये रखनी चाहिए। अभ्यास दीर्घकालिक, निरन्तर तथा सत्कार से युक्त होना चाहिए। सत्कार को मुख्यतः चार रूपों में वर्गीकृत किया गया है— तप, ब्रह्मचर्य, विद्या पूर्वक, श्रद्धा।

(1) दीर्घकालिक

योग मार्ग में पथिक जब अपनी बाह्य वृत्तियों से अन्तः वृत्तियों की ओर आता है, तो योगपथिक को परमात्मा से संबंध स्थापित करने के लिए सतत् अभ्यास की आवश्यकता होती है। इस अभ्यास के दीर्घकाल की कोई परिसीमा नहीं होती है।

(2) निरन्तर्य

मनुष्य की आत्मा का परमात्मा से संबंध स्थापित करने के लिए दीर्घकालिकता के साथ निरन्तरता की आवश्यकता होती है। व्यक्ति का लक्ष्य चाहे कोई भी हो तथा उस लक्ष्य को प्राप्त करने में चाहे कितना भी लम्बा समय लगे परन्तु उसमें निरन्तरता का पूर्ण होना अत्यंत आवश्यक है।

(3) सत्कार पूर्वक

अभ्यास में दीर्घकालिक एवं निरन्तरता के साथ-साथ वह सत्कार पूर्वक होना चाहिए। सत्कार का महर्षि व्यास ने चार रूपों में अर्थ व्यक्त किया है।

तप

ब्रह्मचर्य

विद्या

¹¹ आर्य, सतीश. (2016). *पातंजल योगदर्शन (व्यासभाष्य एवं भोजवृत्ति सहित)*. दिल्ली : परिमल पब्लिकेशन पृ. 81.

श्रद्धा

तप

तप से तात्पर्य योगी से परमात्मा का एकीभूत होने के लिए उसे “सुख-दुःख, लाभ-हानि, भूख-प्यास, जय-पराजय आदि द्वन्द्वों को सहन करते हुए निरन्तर परमात्मा की भक्ति में लगे रहना, यह तप की श्रेणी में आता है।”¹²

ब्रह्मचर्य

“ब्रह्मचर्य से तात्पर्य वीर्य की रक्षा से है।”¹³ वीर्य का क्षरण करने वाले ऐसे संसाधनों से दूर रहना चाहिए। जो गलत संगत की ओर मनुष्य को ले जाते हैं। मनुष्य में जब वीर्य का संरक्षण होता है, तो उसमें उत्साह का संचार होता है। योगी अपने लक्ष्य अर्थात् परमात्मा को पाने के लिए अति उत्साह से लग जाता है, इसका मुख्य कारण वीर्य का संरक्षण होना है। उसमें कोई विकल्प शेष नहीं रहता, वह केवल संकल्प से युक्त होकर अपने लक्ष्य अर्थात् परमात्मा की प्राप्ति में लगा रहता है।

विद्या

विद्या का तात्पर्य मोक्ष प्रदान करने वाले शास्त्रों के पठन-पाठन से है, जो हमें मोक्ष की ओर अग्रसर कर सके।

श्रद्धा

व्यक्ति जब आत्मतत्त्व अर्थात् परमात्मा को पाने के लिए (अपने लक्ष्य को पाने के लिए) पूर्ण उत्साह के साथ-साथ श्रद्धा भी रखता है। श्रद्धा का अभाव मनुष्य के पतन का कारण बनती है। श्रद्धा सभी तत्वों की जननी है। यदि परमात्मा को पाने में आपकी श्रद्धा का जरा सा भी अभाव है, तो योगी द्वारा मोक्ष की प्राप्ति में बाधा अर्थात् अभ्यास में बाधा आ जाती

¹² आर्य, सतीश. (2016). *पातंजल योगदर्शन (व्यासभाष्य एवं भोजवृत्ति सहित)*. दिल्ली : परिमल पब्लिकेशन पृ. 82.

¹³ आर्य, सतीश. (2016). *पातंजल योगदर्शन (व्यासभाष्य एवं भोजवृत्ति सहित)*. दिल्ली : परिमल पब्लिकेशन पृ. 83.

है। अतः योगी में दीर्घकाल, निरन्तरता तथा सत्कार (तप, ब्रह्मचर्य, विद्या, और श्रद्धा) से युक्त अभ्यास दृढ़ आधार को प्राप्त होता है।

वैराग्य— चित्त की वृत्तियों के प्रवाह को रोकने का उपाय वैराग्य है।

वैराग्य के प्रकार

अपर वैराग्य

पर वैराग्य

अपर वैराग्य— अपर वैराग्य थोड़े निम्न स्तर का होता है, तथा यह संप्रज्ञात समाधि की प्राप्ति कराता है।

पर वैराग्य— यह अपर वैराग्य से उच्च स्तर का होता है, तथा यह असंप्रज्ञात समाधि को प्राप्त होता है।

चित्तवृत्तिनिरोध में अपरवैराग्य की भूमिका

“दृष्टानुश्रविकविषयवितृष्णस्य वशीकारसंज्ञा वैराग्यम्।”¹⁴

दृष्ट का वास्तविक अर्थ “देखे हुए” से संबोधित किया गया है।¹⁵ यहाँ देखने से तात्पर्य आँखों की दृष्टि से नहीं है। अपितु पंचज्ञानेन्द्रियों से जिन-जिन विषयों का मनुष्य अनुभव करता है। वे सभी द्रष्ट विषयों के अन्तर्गत आते हैं। पंचज्ञानेन्द्रियों द्वारा जब विभिन्न विषयों (शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध)¹⁶ इत्यादि विषयों से सम्पर्क करती हैं। तब मनुष्य को दो रूपों की अभिव्यक्ति होती है। सुखात्मक रूप तथा दुःखात्मक रूप। ज्ञानेन्द्रियों में से कोई भी इंद्रियाँ जब किसी विषय से संयुक्त होती है, तब वह सुख अथवा दुःख का अनुभव कराती है। सुख तथा दुःख का अनुभव मन की प्रकृति पर निर्भर करती है, जो या तो प्रतिकूल होगी या अनुकूल।

¹⁴ पातंजल योगसूत्र— 1/15

¹⁵ गोयन्दका, हरिकृष्णदास. *महर्षि पतंजलि कृत योगदर्शन (योगसूत्र)*. 37वाँ पुनर्मुद्रण. गोरखपुर : गीताप्रेस. पृ. 19.

¹⁶ आर्य, सतीश. (2016). *पातंजल योगदर्शन (व्यासभाष्य एवं भोजवृत्ति सहित)*. दिल्ली : परिमल पब्लिकेशन पृ. 85.

यद्यपि सुख का अनुभव करायेगी तो मन के अनुकूल तथा दुःख का अनुभव करायेगी, तो मन के प्रतिकूल होगी। दुःख रूपी कड़वे अनुभव व्यक्ति विचार ही नहीं करना चाहता। इसलिए मनुष्य उन दुःख रूपी अनुभवों को त्याज्य योग्य समझता है। इसलिए दृष्ट विषय वे हैं, जो सुख की अनुभूति कराते हैं।

आनुश्राविक विषय का तात्पर्य जो व्यक्ति द्वारा “सुनी गई”¹⁷ है, जो पंचज्ञानेन्द्रियों द्वारा भोगा न गया हो। यह विषय कई प्रकार के हो सकते हैं।

उदाहरणार्थ:- “ऐश्वर्य, सिद्धियाँ, स्वर्गलोक आदि।”¹⁸

इन दोनों विषयों से अर्थात् दृष्ट विषय तथा आनुश्राविक विषयों से जिस मनुष्य के चित्त की आसक्ति (तृष्णा) हट गई हो। तब ऐसे “चित्त का नियंत्रण कर लेना अपर वैराग्य है।”¹⁹

“वाचस्पति मिश्र द्वारा अपरवैराग्य को चार भागों में वर्गीकृत किया है।”²⁰

यतमान

व्यतिरेक

एकेन्द्रिय

वशीकार

यतमान

यतमान अपर वैराग्य का प्रारम्भिक चरण है। चित्त में उपस्थित पंचक्लेशों (अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष, अभिनिवेश) को हटाने का यत्न अथवा प्रयत्न करना यतमान के अंतर्गत आता है।

¹⁷ गोयन्दका, हरिकृष्णदास. *महर्षि पतंजलि कृत योगदर्शन (योगसूत्र)*. 37वाँ पुनर्मुद्रण. गोरखपुर : गीताप्रेस. पृ. 1.9

¹⁸ आर्य, सतीश. (2016). *पातंजल योगदर्शन (व्यासभाष्य एवं भोजवृत्ति सहित)*. दिल्ली : परिमल पब्लिकेशन पृ. 84.

¹⁹ डॉ० कुमार, हरीश. (2020). *योग-सिद्धान्त संग्रह*, गाजियाबाद : राधाप्रेस, पृ. 119.

²⁰ डॉ० कुमार, हरीश. (2020). *योग-सिद्धान्त संग्रह*, गाजियाबाद : राधाप्रेस, पृ. 119.

व्यतिरेक

“चित्त में उपस्थित कुछ क्लेश हैं, जिन्हें दूर कर दिया है, कुछ क्लेश क्षीण हो रहे हैं तथा कुछ को क्षीण किया जायेगा। ये विभेदीकरण की प्रक्रिया ही व्यतिरेक कहलाती है।”²¹

एकेन्द्रिय

“एकेन्द्रिय से तात्पर्य जब चित्त में उपस्थित क्लेशों का पूर्णरूपेण क्षय हो जाता है। तब उन क्लेशों के प्रति उन्मुखता या प्रवृत्ति हट जाती है। परन्तु विषयों के प्रति उत्सुकता बनी रहती है।”²²

वशीकार

चित्त में विषयों के प्रति किसी भी प्रकार की उत्सुकता का भी हट जाना वशीकार अपरवैराग्य कहलाता है।

“महर्षि व्यास ने व्यासभाष्य में वशीकार का अर्थ हेयोपादानशून्या किया है।”²³

जिसमें हेय का अर्थ त्याग करना तथा उपादान का अर्थ ग्रहण करने से है।

यद्यपि माना कि किसी व्यक्ति के साथ कोई बहुत बुरी घटना हुई और वह उस घटना को त्यागना चाहता है। मतलब उस व्यक्ति में उस घटना के प्रति द्वेष तथा अस्थिरता बनी हुई है तथा जब किसी अन्य व्यक्ति द्वारा किसी वस्तु को प्राप्त करने की इच्छा बनी हुई है। वह व्यक्ति सोचता है, कि यह वस्तु मुझे किसी भी प्रकार से ग्रहण अथवा प्राप्त हो जाये, तो जिस मनुष्य में किसी वस्तु को न तो त्यागने अथवा हटाने तथा न किसी वस्तु को ग्रहण करने की इच्छा है। उन दोनों में अर्थात् उस वस्तु को त्यागने तथा ग्रहण दोनों प्रकार की भावना से शून्य है। ऐसी जो चित्त की आसक्ति रहित समावस्था है, अपरवैराग्य कहलाती है।

²¹ डॉ० कुमार, हरीश. (2020). *योग-सिद्धान्त संग्रह*, गाजियाबाद : राधाप्रेस, पृ. 120.

²² डॉ० कुमार, हरीश. (2020). *योग-सिद्धान्त संग्रह*, गाजियाबाद : राधाप्रेस, पृ. 120.

²³ डॉ० कुमार, हरीश. (2020). *योग-सिद्धान्त संग्रह*, गाजियाबाद : राधाप्रेस, पृ. 120.

संप्रज्ञात के भेद

“वितर्कविचारानन्दाऽस्मितानुगमात्सम्प्रज्ञातः।”²⁴

सम्प्रज्ञात समाधि में बाकी सभी विषयों का क्षय हो जाता है, किन्तु एक विषय का आलंबन बना रहता है। जिसे संप्रज्ञात समाधि की दशा कहते हैं। यह मुख्यतः चार प्रकार की होती है।

वितर्क संप्रज्ञात समाधि

वितर्क समाधि में स्थूल विषयों की अधिकता रहती है, क्योंकि इसमें विषयों का आश्रय स्थूल विषयों का होता है। “वितर्क समाधि में चारों विषयों वितर्क, विचार, आनंद, अस्मिता का आलंबन रहता है, लेकिन प्रधानता स्थूल विषयों की रहती है”²⁵

विचार संप्रज्ञात समाधि

जब योगी स्थूल विषयों की समाधि में पारंगत हो जाता है। “तब वह सूक्ष्म विषयों की ओर अग्रसर होता है। इसमें शेष तीन की प्रधानता मुख्य होती है। विचार, आनन्द, अस्मिता”²⁶

आनन्द संप्रज्ञात समाधि

साधक का तीसरा स्तर आता है, आनन्द संप्रज्ञात समाधि का, जब साधक सूक्ष्म विषयों में धीरे-धीरे निपुण हो जाता है, तो सूक्ष्म विषय भी उसे सामान्य लगने लगते हैं। लेकिन मध्य-मध्य में उसे अव्यक्त प्रकृति का भी साक्षात्कार होता है। अव्यक्त प्रकृति के साक्षात्कार होने से उसमें एक अति तीव्र आनन्द का प्रस्फुटन होता है और वह उस आनन्द में तल्लीन हो जाता है। इस आनन्द की अधिकता के कारण उसकी जो अव्यक्त प्रकृति तथा सूक्ष्म विषयों में जो आनन्द है, उससे उसकी विरक्ति होना स्वाभाविक है।

²⁴ पातंजल योगसूत्र- 1/17

²⁵ प्रो० शास्त्री, ज्ञानप्रकाश. प्रो० भारद्वाज, ईश्वर. (2019). *महर्षि पतंजलिकृत योगसूत्र*. संस्करण. दिल्ली : परिमल पब्लिकेशन्स पृ. 53.

²⁶ प्रो० शास्त्री, ज्ञानप्रकाश. प्रो० भारद्वाज, ईश्वर. (2019). *महर्षि पतंजलिकृत योगसूत्र*. संस्करण. दिल्ली : परिमल पब्लिकेशन्स पृ. 53.

अस्मिता संप्रज्ञात समाधि

इस अव्यक्त प्रकृति अर्थात् आनन्द में विरक्ति होने पर, वह अस्मिता नामक समाधि में आगे बढ़ जाता है। तब साधक प्रकृति के सारे रूप चाहे वह व्यक्त हो या अव्यक्त हो दोनों रूपों से उसको वैराग्य हो जाता है। इन दोनों स्वरूपों में विरक्ति का होना ही परवैराग्य का मूल कारण है।

चित्तवृत्तिनिरोध में परवैराग्य की भूमिका

“तत्परं पुरुषख्यातेर्गुणवैतृष्यम्।”²⁷

जब किसी व्यक्ति को संप्रज्ञात समाधि में आत्मा अथवा पुरुष का साक्षात्कार हो जाता है, तो व्यक्ति इस आनन्द की अनुभूति में तल्लीन हो जाता है। आनन्द की इस तल्लीनता में वह अवर कोटि की प्रकृति के चाहे वह व्यक्त अथवा अव्यक्त प्रकृति क्यों न हो, उन दोनों में उसकी आसक्ति पूर्णरूप से हट जाती है और वह प्रकृति के तीन गुण सत्त्व, रजस, तमस से मुक्त हो जाता है। सत्त्व, रजस एवं तमस ही चित्त की क्रियाशीलता का आधार है। जब इन त्रिगुण की क्रियाशीलता का आधार ही नहीं होगा, तो स्वाभाविक ही किसी वृत्ति का जन्म नहीं होगा और जब वृत्ति ही जन्म नहीं लेगी तो वृत्ति का निरोध ही होगा। तो इसमें संक्रमण काल होगा अर्थात् आत्मा का परमात्मा से एकाकार होना ही परवैराग्य है।

परवैराग्य के द्वारा असम्प्रज्ञात समाधि की प्राप्ति

“विरामप्रत्ययाभ्यासपूर्वः संस्कारशेषोऽन्यः।”²⁸

मनुष्य के चित्त में संस्कार और वृत्ति, वृत्ति और संस्कार का चक्र चलता है। परन्तु जब साधक की आत्मा का परमात्मा से एकाकार होता है, तब उसकी सभी विषयों से तृष्णा हट जाती है और वृत्ति रूपी जो संस्कार हैं, उनका निरोध हो जाता है तथा संस्कार वृत्ति रूप

²⁷ पातंजल योगसूत्र- 1/16

²⁸ पातंजल योगसूत्र- 1/18

में परिणित नहीं हो पाती। सभी वृत्तियों के रुक जाने से निरंतर अभ्यास के परिणामतः संस्कार शेष रह जाते हैं। परवैराग्य के द्वारा असम्प्रज्ञात समाधि की प्राप्ति होती है।

असम्प्रज्ञात समाधि को प्राप्त करने के दो मार्ग बताए गये हैं

पहला विदेह एवं प्रकृति लय योगियों के लिए

दूसरा सामान्य योगियों के लिए

विदेह एवं प्रकृति लय योगियों के लिए मार्ग

“भवप्रत्ययो विदेहप्रकृतिलयानाम्।”²⁹

“भव का तात्पर्य है, संसार तथा प्रत्यय का शाब्दिक अर्थ होता है ज्ञान अर्थात् संसार के वास्तविक ज्ञान से जो समाधि लगती है, उसे भवप्रत्यय असम्प्रज्ञात समाधि की संज्ञा दी है।”³⁰

विदेह योगी

जो केवल शरीर में रहते हुए शरीर के अहं भाव को छोड़कर, केवल सांसारिक दृष्टि से संसार का प्रयोग करते हुए। मैं शरीर तथा आत्मा अलग हूँ, इस तरह देह की नश्वरता को स्वीकार कर निरन्तर ईश्वर अथवा परमात्मा में लगे रहते हैं।’ विदेह योगी कहलाते हैं।

प्रकृतिलय योगी

ऐसे योगी जो कि प्रकृति के सूक्ष्म तत्वों को भली प्रकार से समझकर, उनमें दोष देखकर प्रकृति से उनकी आसक्ति हट जाती है तथा उनकी इसी प्रकृति के दोषतत्व भाव को देखते हुए उनके लिए प्रकृति सदा-सदा के लिए अपने कारण में विलीन हो जाती है अर्थात् प्रकृति का प्रतिप्रसव हो जाता है।

²⁹ पातंजल योगसूत्र- 1/19

³⁰ <https://patanjaliyogasutra.in>samad...>

सामान्य योगियों के लिए मार्ग

“श्रद्धावीर्यस्मृतिसमाधिप्रज्ञापूर्वक इतरेषाम्।”³¹

श्रद्धा, वीर्य, स्मृति, समाधि, प्रज्ञा।

श्रद्धा

साधक को अपने लक्ष्य रूपी परमेश्वर को पाने के लिए सर्वप्रथम “चित्त में प्रसन्नता”³² का भाव रखना चाहिए। यदि साधक का चित्त अप्रसन्न हो तो वह अपने लक्ष्य रूपी परमेश्वर के समीप कभी नहीं पहुँच पायेगा।

वीर्य

जब साधक की श्रद्धा परमेश्वर में अटूट हो जाती है, तो परमेश्वर को पाने में “उत्साह”³³ भाव से लग जाता है।

स्मृति

जब साधक परमेश्वर को पाने में निरन्तर उत्साह से लगा रहता है, तब उसके चित्त में निरन्तर एक ही विचार चलता रहता है, कि मैं कैसे उस परमलक्ष्यरूपी परमेश्वर को प्राप्त कर सकूँ।

समाधि

जब साधक की स्मृति में परमेश्वर को प्राप्त करने के लिए केवल एक ही विचार की वृत्ति चलती है, तो उसका चित्त स्मृति के कारण एक ही दिशा में निरन्तर लगे रहने से संयमन की अवस्था को प्राप्त होता है। इसे संप्रज्ञात समाधि की दशा समझनी चाहिए।

³¹ पातंजल योगसूत्र— 1/20

³² आर्य, सतीश. (2016). *पातंजल योगदर्शन (व्यासभाष्य एवं भोजवृत्ति सहित)*. दिल्ली : परिमल पब्लिकेशन पृ. 119.

³³ आर्य, सतीश. (2016). *पातंजल योगदर्शन (व्यासभाष्य एवं भोजवृत्ति सहित)*. दिल्ली : परिमल पब्लिकेशन पृ. 121.

प्रज्ञा

सम्प्रज्ञात समाधि के कारण शुद्ध सत्त्व युक्त बुद्धि जन्म लेती है, जिसे ऋतम्भरा प्रज्ञा कहते हैं। इस ऋतम्भरा प्रज्ञा के कारण उसके अन्दर एक सत्त्व बुद्धि जन्म लेती है, कि मैं आत्मा तथा प्रकृति अलग हूँ। यही ज्ञान रूपी जो बोध है, वही सत्य है। इस ज्ञान रूपी बोध में कोई वृत्ति जन्म नहीं लेती है। प्रकृति (सत्त्व) तथा आत्मा के बोध का अलग-अलग स्वरूप ही विवेकख्याति है और ये सत्य रूपी बुद्धि समाधि का रूप धारण कर लेती है। जिसमें सभी त्रिगुण अपने-अपने स्वरूप में विलीन हो जाते हैं, जिसे असम्प्रज्ञात समाधि की दशा कहते हैं।

4.3.2 ईश्वरप्रणिधान

“ईश्वरप्रणिधानाद्वा।”³⁴

“महर्षि व्यास ने प्रणिधान का व्यापक अर्थ भक्तिविशेष बताया है।”³⁵

जिस समय साधक द्वारा जो कर्म किये जा रहे हैं, उस कर्म में आसक्ति न रखते हुए केवल भगवान को केन्द्रित कर ईश्वर में ही लगे रहना, ईश्वर प्रणिधान कहलाता है।

ईश्वर की परिभाषा

“क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः।”³⁶

“क्लेश—अविद्यादि पंच क्लेश, कर्म—पुण्य कर्म, अपुण्य कर्म, पुण्य और पाप मिश्रित कर्म, पुण्य पाप से रहित, विपाक—उन कर्मों का फल, आशय—उस फल के भोग के अनुरूप वासना।”³⁷

मनुष्य के चित्त में क्लेश रूपी संस्कार होते हैं, और उन क्लेशों के वशीभूत होकर मनुष्य कर्म करता है। इन क्लेशों के कर्मों का वह फल भोगता है। उस फल के अनुरूप उसके

³⁴ पातंजल योगसूत्र— 1/23,

³⁵ प्रो० शास्त्री, ज्ञानप्रकाश. प्रो० भारद्वाज, ईश्वर. (2019). *महर्षि पतंजलिकृत योगसूत्र*. संस्करण. दिल्ली : परिमल पब्लिकेशन्स पृ. 79.

³⁶ पातंजल योगसूत्र— 1/24

³⁷ गीयन्दका, हरिकृष्णदास. *महर्षि पतंजलि कृत योगदर्शन (योगसूत्र)*. 37वाँ पुनर्मुद्रण. गोरखपुर : गीताप्रेस. पृ. 26.

चित्त में वासनाएँ बनती हैं। ये सभी आत्मा में विद्यमान होती हैं और तब इन सब विकारों से रहित आत्मा ईश्वर का रूप बन जाती है।

“तत्र निरतिशयं सर्वज्ञबीजम्।”³⁸

ईश्वर के ज्ञान रूपी बीज की पराकाष्ठा अनन्त एवं सर्वोत्तम है, जिसे शब्दों में वर्णित करना संभव नहीं है।

“पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्।”³⁹

वह गुरुओं का भी गुरु है और वह परमात्मा काल रूपी चक्र से भी बाधित नहीं होता।

“तस्य वाचकः प्रणवः।”⁴⁰

उस ईश्वर का नाम “प्रणव अर्थात् ओम” है।⁴¹

“तज्जपस्तदर्थभावनम्।”⁴²

उस प्रणव रूपी ओंकार का जप से तात्पर्य ईश्वर की उपस्थिति अपने समीपस्थ अनुभव करते हुए तथा ईश्वर के गुणों का मनन करते हुए, अर्थ की भावना के साथ उस प्रणव का सच्चिन्तन करना चाहिए।

“ततः प्रत्यक्चेतनाधिगमो ऽप्यन्तरायाभावश्च।”⁴³

उस प्रणव जप के दो फल हैं।

ईश्वर की प्राप्ति।

चित्त के बाधक तत्त्वों का अभाव।

³⁸ पातंजल योगसूत्र- 1/25

³⁹ पातंजल योगसूत्र- 1/26

⁴⁰ पातंजल योगसूत्र- 1/27

⁴¹ आर्य, सतीश. (2016). *पातंजल योगदर्शन (व्यासभाष्य एवं भोजवृत्ति सहित)*, दिल्ली : परिमल पब्लिकेशन पृ. 152.

⁴² पातंजल योगसूत्र- 1/28

⁴³ पातंजल योगसूत्र- 1/29

4.3.3 एक तत्व अभ्यास

“तत्प्रतिषेधार्थमेकतत्त्वाभ्यासः।”⁴⁴

इन विक्षेप और उपविक्षेपों को हटाने के लिए चित्त को एक स्थान अथवा ईश्वर में मन को लगाने का अभ्यास करना।

4.3.4 चित्तप्रसादन या चित्त की प्रसन्नता का उपाय

“मैत्रीकरुणामुदितोपेक्षाणां सुखदुःखपुण्यापुण्यविषयाणां भावनातश्चित्तप्रसादनम्।”⁴⁵

“सुखी व्यक्ति के प्रति मैत्री भाव रखना चाहिए अर्थात् मैत्रीपूर्ण व्यवहार रखना चाहिए। दुःखी व्यक्तियों के प्रति संवेदना का भाव रखना चाहिए, पुण्यवान व्यक्तियों के प्रति प्रसन्नता का भाव रखना चाहिए तथा ऐसे व्यक्ति जो पाप का आचरण करते हैं, उनके प्रति उपेक्षा का भाव रखना चाहिए।”⁴⁶

इन चार साधनों का नियमपूर्वक पालन करने से चित्त में व्याप्त मलीनता दूर होती है और चित्त स्थिरता को प्राप्त होता है। संवेदनशीलता के कारण मनुष्य में चित्त की स्थिरता बढ़ती है।

4.3.5 प्राण की अवधारणा

“प्रच्छर्दनविधारणाभ्यां वा प्राणस्य।”⁴⁷

“उदर की वायु को बाहर निकालकर उसे रोककर रखने से प्राण शुद्ध होता है तथा प्राण से एकीकृत चित्त भी शुद्ध होता है।”⁴⁸

⁴⁴ पातंजल योगसूत्र- 1/32

⁴⁵ पातंजल योगसूत्र- 1/33

⁴⁶ आर्य, सतीश. (2016). *पातंजल योगदर्शन (व्यासभाष्य एवं भोजवृत्ति सहित)* दिल्ली : परिमल पब्लिकेशन पृ. 178.

⁴⁷ पातंजल योगसूत्र- 1/34

⁴⁸ आर्य, सतीश. (2016). *पातंजल योगदर्शन (व्यासभाष्य एवं भोजवृत्ति सहित)* दिल्ली : परिमल पब्लिकेशन पृ. 183.

4.3.6 विषयवती प्रवृत्ति

“विषयवती वा प्रवृत्तिरुत्पन्ना मनसः स्थितिनिबन्धनी।”⁴⁹

“पांच विषय व उनके स्थान”⁵⁰ —

1	गन्ध	नासिकाग्र
2	रस	जिह्वाग्र
3	रूप	तालु
4	स्पर्श	जिह्वामध्य
5	शब्द	जिह्वामूल

जब साधक सूक्ष्म तत्त्वों अथवा पंचत्रतन्मात्राओं का साक्षात्कार कर लेता है या साधक का चित्त किसी एक विषय पर साक्षात्कार करता है। तब उसकी स्थिति मन को स्थिर करने वाली हो जाती है। तब साधक यह भी अनुभव करता है, कि जिन सुखों के प्रति उसने अनुभव भी नहीं किया था, उन सुखों के प्रति भी उसकी श्रद्धा बढ़ जाती है तथा उसका चित्त स्थिर हो जाता है।

4.3.7 ज्योतिष्मती प्रवृत्ति

“विशोका वा ज्योतिष्मती।”⁵¹

“ज्योतिष्मती का तात्पर्य आत्मा के साक्षात्कार से अभिनिहित है।”⁵² आत्मा का साक्षात्कार होने से साधक का चित्त उन विषयों में भी दृढ़ हो जाता है, जिनके बारे में उसने सुना भी नहीं है।

⁴⁹ पातंजल योगसूत्र— 1/35

⁵⁰ आर्य, सतीश. (2016). *पातंजल योगदर्शन (व्यासभाष्य एवं भोजवृत्ति सहित)* दिल्ली : परिमल पब्लिकेशन पृ. 188.

⁵¹ पातंजल योगसूत्र— 1/36

⁵² डॉ० कुमार, हरीश. (2020). *योग-सिद्धान्त संग्रह*, गाजियाबाद : राधाप्रेस, पृ. 123.

4.3.8 वीतरागविषय चित्त

“वीतरागविषयं वा चित्तम्।”⁵³

विषयों के प्रति जो साधक का राग था वो बीत गया। अर्थात् वैराग्य की भावना का उदय होना। जिसमें साधक का सांसारिक विषयों के प्रति आकर्षण खत्म हो गया। जिसके परिणामतः साधक का चित्त स्थिरता को प्राप्त होता है।

4.3.9 स्वप्न तथा निद्रा का आश्रय

“स्वप्ननिद्राज्ञानालम्बनं वा।”⁵⁴

मनुष्य जब जाग्रत अवस्था में किसी वस्तु का भोग करने के लिए उसे एक आधार की आवश्यकता होती है। परन्तु जैसे ही वह अन्तर्मुखी होता है। उसकी ऊर्जा का स्तर अत्यंत तीव्र हो जाता है, क्योंकि स्वप्न तथा निद्रा में न तो कोई विषय होता है, न ही कोई आश्रय होता है। परन्तु साधक जब स्वप्न तथा निद्रा अर्थात् सुषुप्ति अवस्था में ज्ञान का आलंबन बना लेता है, तब उसका चित्त स्थिर हो जाता है।

4.3.10 यथाभिमतध्यानाद्वा

“यथाभिमतध्यानाद्वा।”⁵⁵

यथाभिमतध्यानाद्वा का तात्पर्य है योगी अपनी इच्छानुसार कहीं पर भी चाहे ध्यान लगा सकता है। इच्छित पदार्थों पर ध्यान लगने से योगी के चित्त की एकाग्रता बढ़ती है।

⁵³ पातंजल योगसूत्र- 1/37

⁵⁴ पातंजल योगसूत्र- 1/38,

⁵⁵ पातंजल योगसूत्र- 1/39

4.3.11 क्रियायोग

“तपः स्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि क्रियायोगः।”⁵⁶

तप, स्वाध्याय तथा ईश्वर-प्रणिधान के द्वारा मनुष्य के चित्त की शुद्धि होती है।

4.3.12 अष्टांग योग

“यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहार

— धारणाध्यानसमाधयोऽष्टावङ्गानि।।”⁵⁷

अष्टांग योग के द्वारा मनुष्य के आचरण तथा व्यवहार के साथ-साथ चित्त की मलिनता दूर होती है।

4.4 चित्त वृत्ति निरोध का परिणाम

“तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्।”⁵⁸

तदा का तात्पर्य पूर्व सूत्र “योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः”⁵⁹ से है। जब योग की अवस्था अर्थात् निरुद्ध भूमि में योग की समस्त वृत्तियाँ निरुद्ध हो जाती हैं। तात्पर्य यह है, कि जब पुरुष एवं प्रकृति का संग पूर्ण रूप से पृथक् हो जाता है, तब उस विवेकख्याति की अवस्था में सत्त्व वृत्ति का निरोध हो जाता है तो उस दशा में योगी का विवेकख्याति से भी वैराग्य हो जाता है। तब वह अपने निज स्वरूप यानि परमात्मा में अवस्थित हो जाता है। जब मनुष्य की चित्त की समस्त वृत्तियों का निरोध नहीं होता तब व्यक्ति अविद्या से ग्रसित रहता है। वह प्रकृति और पुरुष की तादम्यता के एकीभूत को समझकर सुखी एवं दुःखी होता है तथा वह सुख एवं दुःख स्वरूप वाले कर्मों में फँसकर जन्म-मरण के चक्र में फँसा रहता है सकाम कर्मों को भी दो रूपों में वर्गीकृत किया गया है।

⁵⁶ पातंजल योगसूत्र- 2/1

⁵⁷ पातंजल योगसूत्र- 2/29

⁵⁸ पातंजल योगसूत्र- 1/3

⁵⁹ पातंजल योगसूत्र- 1/2

शुभ कर्म (सुकृत कर्म)

अशुभ कर्म (दुष्कृत कर्म)

व्यक्ति यह समझता है, कि यदि वह शुभ कर्मों को करेगा तो उससे मोक्ष प्रदान होगा। ये सुकृत कर्म एक स्तर तक तो ठीक रहते हैं, तथा ये अगले जन्म में व्यक्ति को अच्छा परिवेश प्रदान करते हैं। परन्तु ये कर्म इच्छा रूपी फल की कामना से किये जाते हैं, जो कि बन्धनत्व का कारण है, ठीक इसी प्रकार से दुष्कृत कर्म भी बन्धन का कारण है। जो मोक्ष के मार्ग में बाधा का काम करते हैं। इन बन्धनों से मुक्ति का उपाय केवल निष्काम कर्म है। ये निष्काम कर्म ही हमारे विकारों को दूर कर मोक्ष के मार्ग में पथप्रदर्शक का काम करते हैं और यही निष्काम कर्म चित्त की वृत्तियों को अवरुद्ध करने में सहायता प्रदान करते हैं तथा संसार के जन्म-मरण रूपी बंधन से छुटकारा दिलाते हैं। जिसमें योगी को प्रकृति और पुरुष के बन्धनत्व से भी वैराग्य हो जाता है। जिसके परिणामतः चित्त के आश्रयभूत त्रिगुण सत्त्व, रजस तथा तमस का आश्रय भी समाप्त हो जाता है। अर्थात् चित्त का आलम्बन बनाने वाली सत्त्व, रजस, तमस की वृत्तियों का आधार समाप्त हो जाता है। यानि आत्मा जो भी साक्षात्कार करती है, वह चित्त के माध्यम से ही करती है। जिसके परिणामतः चित्त का आश्रय स्वतः अपने मूलभूत स्वरूप में लय या विलीन हो जाती है। अर्थात् चित्त का क्रियायोग तथा ध्यान के द्वारा पूर्णतः प्रतिप्रसव या उत्पत्ति क्रम अपने निज स्वरूप में विलीन हो जाता है। जिसके फलस्वरूप आत्मा कर्म, विपाक, आशय से रहित होकर अपने मूल स्वरूप में अवस्थित हो जाती है।

पंचम अध्याय

चित्तवृत्ति निरोध का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण

- 5.1 चित्तवृत्ति निरोध का
मनोवैज्ञानिक विश्लेषण

5 चित्तवृत्ति निरोध का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण

5.1 चित्तवृत्ति निरोध का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण

महर्षि पतंजलि ने मन, बुद्धि व अहंकार को मिलाकर चित्त कहा है। जबकि शंकराचार्य जी के अनुसार चित्त का अपना स्वतंत्र अस्तित्व है। वेदांत के अनुसार मन, बुद्धि, चित्त तथा अहंकार इन चारों को मिलाकर अन्तःकरण चतुष्टय कहा गया है।

मनुष्य के चित्त में अनंत जन्मों के संस्कार समाहित होते हैं। चाहे वे पूर्व जन्म के हो या इस जन्म के। चित्त में संचित संस्कार ही मनुष्य के व्यवहार को प्रभावित करते हैं। पूर्व जन्म के संस्कार चाहे वे पुण्य हो या अपुण्य हो, उसे भोगने के लिए आत्मा को शरीर धारण करना पड़ता है। इन दो कर्मों (सुकृत एवं दुष्कृत कर्म) के आधार पर मनुष्य का व्यवहार निर्भर करता है, जो उसके भविष्य के व्यक्तित्व एवं व्यवहार का द्योतक है।

व्यक्ति द्वारा प्रतिपादित क्रियाएँ चाहे वे मानसिक, शारीरिक या वाचिक क्रिया हो। मानसिक स्तर पर यदि मनुष्य के भीतर लोगों के प्रति दायलुता, मित्रता, सद्भावना आदि भावनाएँ हैं तो ऐसी संवेदना अपने लिए तथा दूसरों के प्रति व्यवहारक सकारात्मक होगी एवं ठीक इसके विपरीत मनुष्य में लोगों के लिए क्रोध, द्वेष, ईर्ष्या होगी तो उसका आचरण एवं व्यवहार स्वयं के प्रति तथा दूसरों के प्रति नकारात्मक होगा।

तब ऐसे नकारात्मक, सकारात्मक रूपी संस्कार व्यक्ति के चित्त में संग्रहित होंगे तथा ये नकारात्मक संस्कार व्यक्ति के भविष्य में दूसरों तथा स्वयं के लिए व्यवहार में कष्टदायक सिद्ध होंगे।

ठीक इसी प्रकार शारीरिक अथवा वाचिक क्रिया द्वारा व्यक्ति में धर्म एवं अधर्म रूपी संस्कार बनते हैं तथा जब ये संस्कार मनुष्य के चित्त में प्रबल आलम्बन को प्राप्त होकर जाग्रत होते हैं। तो मनुष्य द्वारा चित्त में उत्पन्न जो भी धर्म अथवा पुण्य रूपी क्रियाएँ की जाती हैं, जिसमें आसक्ति का भाग नगण्य होता है,

“मन एवं मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः।

बन्धाय विषयासक्तं मुक्त्यै निर्विषयं स्मृतम्।।”¹

वो उन्हें मोक्ष की दिशा में प्रवृत्त करती है तथा व्यक्ति द्वारा की गई नकारात्मक क्रियाएँ मनुष्य के चित्त में अधर्म रूपी संस्कारों को जन्म देती है। जो मनुष्य के व्यवहार को नकारात्मक बनाता है और यही नकारात्मक व्यवहार तथा आचरण राग-द्वेष, सुख-दुःख तथा अज्ञान को जन्म देते हैं।

चित्त में सन्निहित संस्कार का व्यवहार में रूपांतरण मुख्यतः अन्तःकरण के माध्यम से होता है। चित्त तथा व्यवहार का पारस्परिक संबंध है। व्यक्ति के चित्त में प्रबल आलंबन आने पर जब कोई समस्या आती है, तब उस विषय से संबंधित संस्कार चित्त में जन्म लेते हैं।

संस्कार से तात्पर्य चित्त में उत्पन्न विचारों से है, फिर ये विचार सही या गलत है। उस पर मन संकल्प एवं विकल्प करता है, जिनसे अनेक प्रकार की वृत्तियाँ जन्म लेती हैं। फिर उन विचारों में से निर्णय करना ये बुद्धि है तथा जिस बुद्धि के अनुरूप व्यक्ति जो क्रिया करता है कि ये वस्तु मेरी है। वो अहंकार का द्योतक है।

यद्यपि मनुष्य का व्यवहार यदि सकारात्मक है तो चित्त में अच्छे संस्कारों का पुनर्स्थापन होगा। तब व्यक्ति के चित्त में समाहित अच्छे संस्कारों के माध्यम से व्यक्ति का व्यवहार व आचरण अच्छा होगा। किंतु व्यक्ति का व्यवहार यदि नकारात्मक है तो चित्त में क्लिष्ट वृत्ति रूपी संस्कारों की स्थापना होगी, जो कि उसके नकारात्मक व्यवहार को जन्म देगी।

यदि व्यक्ति की इच्छाएँ पूरी हुई अथवा उन इच्छाओं का विघात हुआ तो मनुष्य के भीतर ईर्ष्या, द्वेष, अहंकार तथा घृणा के भाव विकसित होंगे, जो मनुष्य को मोक्ष की ओर अग्रसर न करके उसे पतन की ओर ले जायेगी। जिसके परिणाम स्वरूप मनुष्य का व्यवहार नकारात्मक होगा। जिससे मनुष्य का चित्त अहंकार, घृणा तथा हिंसात्मक विचारों से युक्त होगा।

¹ ब्रह्मविन्दूपनिषद्, मंत्र- 2

अतः इन नकारात्मक विचारों से चित्त को शुद्ध करने के लिए पातंजलयोग शास्त्र में प्रतिपादित विभिन्न उपाय बताये गए हैं। जो मनुष्य के चित्त की मलिनता को दूर कर इन मलीन वृत्तियों का निषेध होता है तथा इन निषेध वृत्तियों द्वारा साधक की बुद्धि यथार्थ ज्ञान का अनुभव करती है।

5.1.1 चित्तवृत्ति निरोध एवं संवेदन

“संवेदन एक ऐसी सरल मानसिक प्रक्रिया हैं जिसके द्वारा हमें वस्तुओं एवं व्यक्तियों के बारे में एक आभास मात्र होता है क्योंकि इसमें अर्थहीनता एवं अस्पष्टता होती है।”²

संवेदन के बाद दूसरी प्रक्रिया प्रत्यक्षण की होती है, जिसके उपरान्त व्यक्ति को पंचज्ञानेन्द्रियों के माध्यम से पहले किसी घटना का एक आभासित प्रतिबिंब बनता है, फिर उसका कुछ समय बाद अर्थपूर्ण तरीके से प्रत्यक्षण हो जाता है। संवेदना तथा प्रत्यक्षण की मध्यस्थता की पूर्ण प्रक्रिया वातावरण में उपस्थित बाह्य उद्दीपक से ही संभव हो पाती है।

व्यक्ति संवेदना तथा प्रत्यक्षण की भावी प्रक्रिया से गुजरते हुए बाह्य उद्दीपक के माध्यम से व्यक्ति के भीतर भाव की उत्पत्ति होती है। “भाव मुख्यतः दो प्रकार के होते हैं।”³

1. सुखद भाव

2. दुःखद भाव

1. **सुखद भाव**— सुखद भाव से तात्पर्य व्यक्ति वातावरण में उपस्थित उद्दीपक से होने वाली परिघटना से है, तथा उस घटनाक्रम में व्यक्ति कैसे अपने व्यवहार को समायोजित कर पाता है, यह उसकी प्रतिक्रिया पर निर्भर करता है। यदि व्यक्ति की प्रतिक्रिया उद्दीपक की सकारात्मक दृष्टि से अनुकूल है, तो वह उसके लिए सुखद होगी।

² सिंह, अरुण कुमार, सिंह, आशीष कुमार. (2002). *सरल सामान्य मनोविज्ञान* दृ तृतीय संस्करण. दिल्ली : मोतीलाल बनारसीदास. पृ. 56.

³ सिंह, अरुण कुमार, सिंह, आशीष कुमार. (2002). *सरल सामान्य मनोविज्ञान* दृ तृतीय संस्करण. दिल्ली : मोतीलाल बनारसीदास. पृ. 138.

2. **दुःखद भाव**— यदि व्यक्ति की अनुक्रिया आस-पास के वातावरण में उपस्थित उसकी भाव-दशा के विपरीत है, तो वह उस परिस्थिति में तालमेल नहीं बिठा पायेगा तथा उस परिस्थिति से अपने आप को जल्दी से जल्दी पृथक करने की कोशिश करेगा।

दोनों भावों की दशा अन्ततः चित्त में क्लिष्ट दशा का द्योतक है, जिससे अविद्या आदि क्लेशों की उत्पत्ति होती है।

- 1) अविद्या
- 2) अस्मिता
- 3) राग
- 4) द्वेष
- 5) अभिनिवेश

क्लेशों की क्लिष्ट दशा की अवस्थाएँ

अविद्या बाद के चार क्लेशों की (अस्मिता, राग, द्वेष, अभिनिवेश) उत्पत्ति भूमि है।

अस्मिता आदि की चार अवस्थाएँ निम्न प्रकार की हैं।

प्रसुप्त

तनु

विच्छिन्न

उदार

प्रसुप्त अवस्था— व्यक्ति के चित्त में संस्कारों की दशा सुप्त अवस्था में रहती है, जो आलम्बन पाकर ही ये प्रसुप्त संस्कार उदित होते हैं।

ये प्रायः दो स्वरूपों में हो सकते हैं।

- 1) सुखद रूप

2) दुःखद रूप

अगर व्यक्ति के पूर्वजन्म के संस्कार सकारात्मक हैं, जो उसे गलत दिशा की ओर प्रवृत्त नहीं होने देते हैं, तो व्यक्ति हर विषम परिस्थिति में अपने आप को समायोजित कर लेता है।

किन्तु यदि उसके चित्त में संग्रहित पूर्वजन्म के संस्कार नकारात्मक अर्थात् रज एवं तम से युक्त हैं, तो वे प्रकृति अर्थात् रज एवं तम रूपी संस्कारों को अपनी ओर आकर्षित करेगी, जो उसे उसके पतन की ओर अर्थात् दुःख की ओर ले जायेगा।

तनु अवस्था— तनु का तात्पर्य व्यक्ति के चित्त में क्लेशों की दशा को क्रियायोग के द्वारा कम अथवा क्षीण कर दिया जाना है। ऐसी दशा में व्यक्ति का स्वरूप पूर्णतः शान्त एवं मन स्थिर रहता है।

मनोविज्ञान में व्यक्ति का स्तर दो रूपों में समझा जाता है।

- 1) मन की सामान्य दशा तथा व्यवहार।
- 2) मन की अस्थिर दशा तथा अस्थिर दशा के कारण उसका असामान्य व्यवहार।

अर्थात् जिनका चित्त या मन सामान्य दशा में स्थिर नहीं है, उनके मन की उच्छिन्न दशा को एकाग्र तथा स्थिरता के लिए क्रियायोग का उपाय लाभपूर्ण है। क्रियायोग के द्वारा व्यक्ति के मन में उठ रही नकारात्मक या हीन कोटि की वृत्तियों को कम किया जा सकता है। क्रियायोग को व्यक्ति व्यवहारिक जगत में रहते हुए भी आसानी से कर सकता है।

विच्छिन्न अवस्था— व्यक्ति के मन में मुख्यतः एक से ज्यादा विचारों का प्रवेश संभव ही नहीं है। यदि व्यक्ति किसी वस्तु के प्रति आसक्त है, तो उसमें प्रथम उस वस्तु के प्रति राग की ही भावना उत्पन्न होगी, इसका मतलब यह नहीं है, कि बाकी विचारों की वृत्तियाँ उपस्थित नहीं होंगी। अर्थात् एक समय में एक ही विचार उत्पन्न होगा।

उदार अवस्था— उदार अवस्था से तात्पर्य व्यक्ति जब किसी वस्तु या भौतिक जगत में भोग रूपी संसाधनों को प्राप्त करने में, जिस समय उसके चित्त में जो क्लेश अपने प्रकट

स्वरूप अर्थात् चित्त में अपनी पूर्ण सामर्थ्य से कार्य करते हैं। यह उसकी उदार अवस्था कहलाती है।

सकारात्मक तथा नकारात्मक वृत्तियों के द्वारा उत्पन्न संवेग से शरीर में परिवर्तन

मनोविज्ञान की दृष्टि से व्यक्ति में भावना का स्वरूप दो ही रूपों में अभिव्यक्त होता है।

सुखात्मक अनुभूति

दुःखात्मक अनुभूति

सुख की अनुभूति में व्यक्ति प्रायः अपने लक्ष्य को प्राप्त करने तथा पुरुषार्थ के माध्यम से भौतिक संसाधनों को एकत्र कर उसमें सुख प्राप्त करने की कोशिश करता है, किन्तु अत्यधिक पुरुषार्थ करने से उसकी मानसिक तथा शारीरिक ऊर्जा का क्षय होता है। जिसके कारण वह प्रसन्नता के आंतरिक आयमों की संतुष्टि नहीं कर पाता, तथा सुख प्राप्ति की चाह उसे एक गहरे गर्त में धकेलती जाती है, जिसके परिणामतः थोड़े समय के लिए वह सुख की अनुभूति कर पाता है, परन्तु मन में एक असंतोष की झलक फिर भी महसूस करता है। यही असन्तोष व्यक्ति के मन में एक वृत्ति के रूप में परिणित होती है, जो कि कहीं न कहीं दुःख का अंश है, तथा दुःख के अंश की यह अवस्था पूर्ण दुःख की ओर अग्रसर करती है।

एष धर्मः सनातनः

दुःख की अनुभूति का दूसरा प्रमुख कारण व्यक्ति की इच्छाओं का विघात है, जिसका कारण अपने लक्ष्य को प्राप्त न कर पाना तथा अपने घनिष्ठ परिजनों के वियोग की अवस्था है। सुखात्मक भाव तथा दुःखात्मक भाव दोनों ही दृष्टि से दुःख की अवस्था है, परन्तु दोनों में थोड़ा अन्तर है। सुख की अत्यधिक लालसा मनुष्य को स्वार्थी बना देती है, और सुख प्राप्ति की चाह में व्यक्ति अनेक अधर्म रूपी कार्य करता है।

दोनों ही दृष्टिकोणों से शरीर में सांवेगिक परिवर्तन होता है, जिससे शरीर की साम्यावस्था भंग हो जाती है। भाव की अभिव्यक्ति को योग दर्शन में क्लेशों के नाम से संबोधित किया है, जो निम्न प्रकार से है।

अविद्या— योगदर्शन के दृष्टिकोण से जिन पदार्थों की सम्पूर्ण सत्ता को अनित्य माना जाता है, सांसारिक व्यक्ति उस सत्ता को, जो कि जड़ रूप है, उसे कभी नष्ट न होने वाली मानता है, किन्तु उससे संबंधित कोई भी चीज़ जो उसे प्रिय है, नष्ट होती है, तो उस वस्तु के वियोग को व्यक्ति सहन नहीं कर पाता। ठीक इस प्रकार अपवित्र को पवित्र, दुःख को सुख एवं इस संसार की वस्तुओं में तथा अपने शरीर की सम्पूर्णता को पृथक् भाव से अलग रूप से न देखकर उसमें ममत्व का अनुभव करना यह अविद्या है। जब इन जड़ रूपी वस्तुओं का नाश होता है, जो उसे प्रिय है, इससे उसके मन में विकृति का जन्म होता है, तथा ये विकृति राग एवं द्वेष का द्योतक है।

अस्मिता— योग दर्शन के परिप्रेक्ष्य से पुरुष एवं प्रकृति की अभिव्यक्ति को अलग रूप में न देखकर एक रूप में अभिव्यक्त होना अस्मिता है। इनका एकीकरण सुख एवं दुःख के चक्रों का चलते रहना, जिसमें स्थिरता का अभाव होता है। अस्मिता के प्रभाव में व्यक्ति कभी भी संतोष को प्राप्त नहीं होता।

राग— सुख प्राप्ति की अत्यधिक लालसा की प्रवृत्ति राग कहलाती है।

द्वेष— दुःख की प्राप्ति में द्वेष का होना।

अभिनिवेश— मृत्यु का भय।

ये भाव तथा क्लेश मनुष्य के मन में विकृति उत्पन्न करते हैं, और यही शरीर में विभिन्न विकारों को जन्म देते हैं। जिसे शरीर की सांवेगिक अभिव्यक्ति कहा जाता है। जब व्यक्ति को किसी, वस्तु से मोह होता है, तथा जब उसके विछोभ की पीड़ा वह सहन नहीं कर पाता है, तब उस अवस्था में उसके शरीर की संवेगिक दशा में परिवर्तन होता है, जिसके कारण उसे अत्यधिक दुःख की अवस्था का सामना करना पड़ता है, जिसके फलस्वरूप उसके रक्तचाप में कमी आती है, तथा दूसरी अवस्था में जब व्यक्ति अपनी प्रिय वस्तु को अर्जित करता है, तो उसमें एक अलग ही उमंग व उत्साह होता है, जिसके परिणामतः उस व्यक्ति के रक्त चाप में वृद्धि होती है। ठीक इसी तरह क्रोध की अवस्था में भी रक्त चाप में वृद्धि होती है।

ईश्वर भक्ति का मनुष्य के भावों पर प्रभाव

“तज्जपस्तदर्थभावनम्।”⁴

मनुष्य के सुख एवं दुःख रूपी भावों को ईश्वर की ओर मोड़ने के लिए ओमकार का जप अर्थ की भावना के साथ करना चाहिए। ओमकार के जप से व्यक्ति के अन्दर दुःख रूपी भाव कम होकर सकारात्मक भाव उत्पन्न होते हैं। जिससे व्यक्ति का चित्त ईश्वर की ओर उन्मुख होता है। स्वाध्याय करने से व्यक्ति के सकारात्मक या अच्छे गुणों का विकास होता है। इसके साथ ही यम, नियम के पालन से व्यक्ति के बाह्य आचरण तथा मानसिक स्तर की शुद्धि होती है। जिससे मनुष्य का चित्त सात्विक होकर ईश्वर भक्ति में लीन रहता है। ईश्वर भक्ति में लीन रहने पर व्यक्ति का मन संसार के विषयों के प्रति आसक्त नहीं रहता।

5.1.2 चित्त वृत्ति निरोध एवं अधिगम और अभिप्रेरण

मनुष्य के अधिगम का क्षेत्र उसके आसपास के वातावरण से संबंधित है। “अधिगम से तात्पर्य व्यक्ति के व्यवहार में होने वाले परिवर्तन से है, जो कि अभ्यास या अनुभव से ही सहसंबंधित है, जो कि व्यक्ति को वातावरण में समायोजित करने में मदद करता है।”⁵

अधिगम तथा अभिप्रेरण एक दूसरे के पूरक हैं। अभिप्रेरण ही मनुष्य को कुछ नया सीखने के लिए प्रेरित करती है। अभिप्रेरण दो प्रकार का होता है। सकारात्मक तथा नकारात्मक।

सकारात्मक अभिप्रेरण मनुष्य को कुछ नया सीखने के लिए बाध्य करती है तथा नकारात्मक अभिप्रेरण मनुष्य को दुष्कर कार्य करने के लिए प्रेरित करती है।

सकारात्मक तथा नकारात्मक पहलू मनुष्य के पूर्वजनित कर्मों का द्योतक है, तथा चित्त में प्रायः इन कर्मों के संस्कार रहते हैं। पूर्वजनित संस्कारों के कर्म जो इस जन्म में भोगने योग्य हैं, उन कर्मों के संस्कार चाहे वे पुण्य रूप में हों या अपुण्य रूप में उन संस्कारों की छाप भी चित्त में सन्निहित हो जाती है।

⁴ पातंजल योगसूत्र- 1/28

⁵ सिंह, अरुण कुमार, सिंह, आशीष कुमार. (2002). *सरल सामान्य मनोविज्ञान*. तृतीय संस्करण. दिल्ली : मोतीलाल बनारसीदास. पृ. 82.

अधिगम तथा अभिप्रेरण का योग दर्शन से संबंध

चित्त में प्रायः क्लिष्ट तथा अक्लिष्ट वृत्तियों का आधिपत्य रहता है, क्लिष्ट तथा अक्लिष्ट वृत्तियों के संस्कार कर्मों के रूप में परिवर्तित होते हैं। वर्तमान परिस्थिति में साधारण मनुष्यों का चित्तवृत्ति निरोध पूर्णतः सम्भव नहीं है। चित्त में उठ रही क्लिष्ट वृत्तियों की धारा को मोड़कर सकारात्मक दिशा दी जा सकती है। अक्लिष्ट वृत्तियों का स्वभाव हानिकर नहीं है, यद्यपि क्लिष्ट वृत्तियों का प्रवाह, जो कि चित्त में रहती हैं, ऐसी वृत्तियाँ मनुष्य के लिए कष्टप्रद हैं। अतः इन क्लिष्ट वृत्तियों की धारा को मोड़कर उन वृत्तियों को अक्लिष्ट बनाया जा सकता है। क्लिष्ट वृत्तियों की धारा को अभ्यास तथा वैराग्य द्वारा परिवर्तित कर अक्लिष्ट बनायी जा सकती है।

इसमें पहला उपाय अष्टांग योग है, इन अष्टांग योग में आठ अंग हैं, जिनमें प्रथम पाँच अंग यम, नियम, आसन, प्राणायाम एवं प्रत्याहार बहिरंग हैं तथा बाद के धारणा, ध्यान तथा समाधि अंतरंग है। “बहिरंग योग का लक्ष्य शारीरिक स्तर से है, जिसमें व्यक्ति अपने शरीर एवं मन को योग की उच्च क्रियाओं के लिए तैयार करना है, जिसके परिणामस्वरूप बाह्य जगत से उत्पन्न वृत्तियों पर नियन्त्रण प्राप्त करने में सफल होता है, तथा अंतरंग योग का संबंध मानसिक स्तर से है। अंतरंग योग के नियमित अभ्यास से व्यक्ति अपने मन पर पूर्ण नियंत्रण कर पाता है।”⁶

यम— यम को पाँच भागों में बाँटा गया है।

- 1) अहिंसा
- 2) सत्य
- 3) अस्तेय
- 4) ब्रह्मचर्य
- 5) अपरिग्रह

⁶ डॉ० रूपम. (2017). *योग मनोविज्ञान*. द्वितीय संस्करण. दिल्ली : मोतीलाल बनारसीदास. पृ. 23.

1) अहिंसा— अहिंसा से तात्पर्य व्यक्ति को मन, वाणी तथा शारीरिक रूप से कष्ट न देना है। अहिंसा का पालन करने से व्यक्ति में सकारात्मक परिवर्तन आता है, जो कि उसके व्यवहार में देखा जा सकता है।

सकारात्मक का यह परिवर्तन व्यक्ति के अंदर प्रेरणा का स्रोत जगाता है, तथा यही अभिप्रेरणा व्यक्ति में अधिगम या सीखने की प्रक्रिया को तेज बनाता है। व्यक्ति के व्यवहार में यह परिवर्तन स्थायित्व का रूप धारण कर लेता है।

2) सत्य— सत्यता से तात्पर्य व्यक्ति के असत्य न बोलने से है। कभी-कभी अति सत्य बोलना व्यक्ति के खिलाफ भी हो जाता है, इसलिए सत्य को देश, काल परिस्थिति के अनुसार अपने जीवन में उतारने से भी है। सत्य केवल मनुष्य अन्तःकरण को ही शुद्ध नहीं करता बल्कि उसके व्यक्तित्व में भी परिवर्तन लाता है, जो कि अधिगम की प्रक्रिया को बढ़ाता है।

3) अस्तेय— अस्तेय से तात्पर्य चोरी न करने से है। मनुष्य अपने द्वारा कमाये हुए धन से संतुष्ट नहीं रहता। भोग की यह लालसा व्यक्ति को निन्दित कार्य के लिए बाध्य करती है।

जिसके परिणामतः व्यक्ति में निन्दित कार्य करने की प्रेरणा जन्म लेती है। जिससे मनुष्य गलत कार्यों की ओर अग्रसर होता है, जिससे व्यक्ति में नकारात्मक प्रवृत्तियों का जन्म होता है, जिसे व्यवहार में आये हुए परिवर्तन में साफ देखा जाता है।

ठीक इसके विपरीत अस्तेय के पालन से व्यक्ति में अक्लिष्ट वृत्तियों का जन्म होता है तथा व्यवहार में परिवर्तन सकारात्मक होता है।

4) ब्रह्मचर्य— “ब्रह्मचर्य का शाब्दिक अर्थ है ब्रह्म में आचरण अर्थात् संयमी होना।”⁷ यहाँ ब्रह्म से आश्रय दिव्य चेतना से है। उच्च चेतना से तात्पर्य व्यक्ति अपने काम ऊर्जा की सीमाओं को तोड़कर अपनी चेतना को ब्रह्म की चेतना से एकीकृत कर देना है। जिसके परिणामस्वरूप उसमें संयम का विकास होता है। परिणामतः संयम के विकास के

⁷ डॉ० रूपम. (2017). *योग मनोविज्ञान*. द्वितीय संस्करण. दिल्ली : मोतीलाल बनारसीदास. पृ. 26.

साथ-साथ अभिप्रेरण द्वारा प्रेरित होकर व्यक्ति ब्रह्म को पाने के नये आयमों को सीखता है, जो उस साधक के आचरण तथा व्यवहार में झलकता है।

5) अपरिग्रह— अपरिग्रह से तात्पर्य “आवश्यकता से अधिक धन, सम्पत्ति तथा भोग सामग्री का संचय न करना अपरिग्रह की श्रेणी में आता है।”⁸ अपरिग्रह के पालन से व्यक्ति में सकारात्मक ऊर्जा का दायरा बढ़ जाता है। जिसके परिणामस्वरूप व्यक्ति प्रेरित होकर धर्म रूपी कार्यों तथा दान आदि में आगे की ओर अग्रसर होता है, जिसके द्वारा व्यक्ति में अधिगम की प्रक्रिया स्वतः ही निर्मित हो जाती है, जिससे व्यक्ति धर्म के क्षेत्र की ओर अग्रसर होता है।

नियम— नियम द्वारा व्यक्ति में आंतरिक अनुशासन का विकास होता है।

1) शौच

2) संतोष

3) तप

4) स्वाध्याय

5) ईश्वर-प्रणिधान



1) शौच— शौच का तात्पर्य शारीरिक शुद्धता तथा मानसिक शुद्धता से है।

शारीरिक शुद्धता भौतिक जगत में उपलब्ध मिट्टी एवं जल से की जाती है, साथ ही मानसिक यानि मन की शुद्धता दूसरों के लिए करुणा रखना, स्नेह, सत्यनिष्ठा तथा दयालुता का भाव, व्यक्ति के मन को पवित्र एवं सकारात्मक रूप देता है।

2) संतोष— व्यक्ति द्वारा सामान्य जीवन को चलाने के लिए जो भी अर्जित एवं पुरुषार्थ किया जाता है, उसमें संतुष्ट रहना ही संतोष के अंतर्गत आता है।

⁸ गोयन्दका, हरिकृष्णदास. *महर्षि पतंजलि कृत योगदर्शन (योगसूत्र)* 37वाँ पुनर्मुद्रण. गोरखपुर : गीताप्रेस. पृ. 64.

3) तप— तप का तात्पर्य व्यक्ति द्वारा अपने लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए जो भी कष्ट हो रहे हैं, जो कि उसे परमार्थ की ओर अग्रसर कर रहे हैं, वह तप के अन्तर्गत आता है।

4) स्वाध्याय— स्वाध्याय से तात्पर्य स्वयं को जानने एवं उन पुस्तकों से है, जो हमारे व्यक्तित्व का निर्माण करती हैं।

5) ईश्वर—प्रणिधान— ईश्वर—प्रणिधान से तात्पर्य, मनुष्य के द्वारा जो भी कर्म किये जाते हैं, बिना उस कर्म फल की इच्छा के सबकुछ ईश्वर को अर्पित कर देना ही ईश्वर प्रणिधान है।

नियम में प्रतिपादित शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय तथा ईश्वर प्रणिधान द्वारा व्यक्ति के अंतःकरण में एक असीम ऊर्जा का संचार होता है, जो व्यक्ति को दिव्य सत्ता से जोड़ने के लिए अभिप्रेरित करती है, तथा यही प्रेरणा मनुष्य को दिव्य सत्ता से अनुभूत कराकर उसके व्यवहार में परिवर्तन लाती है, तथा यही अनुभूत जो मनुष्य के व्यवहार को परिवर्तित करती है, अधिगम है।

आसन— जब व्यक्ति सुखप्रद आसन में बैठता है, तब मनुष्य के शरीर एवं मन में उठ रही तरंगे धीरे-धीरे एक लयात्मक स्थिति का रूप धारण कर लेती है, जिसमें किसी भी प्रकार की हलचल शरीर में नहीं होती।

सुखपूर्वक आसन में जब व्यक्ति कमर एवं गर्दन एक सीध में रखता है, तो उसके मन में किसी भी प्रकार के विचार जन्म नहीं लेते तथा शरीर में नलिका विहीन अन्तः स्त्रावी गंधियों से गुड हार्मोन (एंडोर्फिन, डोपामाइन, सेरोटोनिन, ऑक्सीटोसिन) स्त्रावित होते हैं, जिससे शरीर के अन्दर उपस्थित सूक्ष्म नाड़ियाँ शान्त एवं सुसंगठित रहती हैं, तथा नाड़ियों में बहने वाली प्राण ऊर्जा का क्षय नहीं होता।

जिससे इसका असर व्यक्ति के व्यवहार में सकारात्मक रूप से देखा जाता है।

प्राणायाम— पूरक तथा रेचक की प्रक्रिया के दौरान प्राण के आवागमन का रुक जाना अर्थात् कुम्भक की प्रक्रिया, प्राणायाम है। “प्राणायाम के लिए पहले आसन की सिद्धि होना आवश्यक है।”⁹

प्राणायाम के सुचारु रूप से आवागमन होने पर प्राणिक ऊर्जा के माध्यम से रक्त शुद्ध होता है। प्राणिक ऊर्जा में कुम्भक के माध्यम से मनुष्य की जीवनी शक्ति तथा कार्य करने का पुरुषार्थ बढ़ता है, तथा मन में विचारों का उद्वेग कम होता है।

प्रत्याहार— इंद्रियाँ जो विषयों से संयुक्त होती हैं, और फिर उन विषयों से संबंधित ज्ञान मनुष्य के मस्तिष्क में होता है तथा उस वस्तु से संबंधित ज्ञान की विचारशीलता मनुष्य के भीतर उत्पन्न होती है।

जिन्हें प्रारंभ में बहिरंग योग की श्रेणी में आने वाले अंग यम, नियम, आसन तथा प्राणायाम द्वारा परिशुद्ध किया जाता है, जो कि अभ्यास द्वारा ही संभव है। तथा बाद में इन इंद्रिय रूपी विषयों का परिग्रहण प्रत्याहार द्वारा बंद किया जाता है, जिसके फलस्वरूप विषयों का संचरण व्यक्ति के मस्तिष्क तक नहीं पहुँच पाता तथा विचारों की क्रियाशीलता धीरे-धीरे कम हो जाती है एवं साधक का मन विशुद्ध रूप से परमात्मा में एकीकृत हो जाता है और यही एकीकरण की प्रक्रिया मनुष्य के अन्तःकरण में स्वयं को प्रेरित कर मनुष्य को अध्यात्म मार्ग में आगे बढ़ाती है तथा उसके व्यवहार में यह परिवर्तन लंबे समय तक रहता है।

बहिरंग योग के द्वारा मनुष्य में विचारों की परिशुद्धि होती है, तथा उन विचारों की आवागमन की प्रक्रिया को रोकने के लिए किसी एक बिन्दु पर ठहर जाना ही धारणा है। मन के ठहरने की प्रक्रिया में मन में ठहराव उत्पन्न होता है, जिससे चित्त स्थिर होता है।

धारणा में वृत्ति का एक तार चलना ही ध्यान है। इसके उपरांत ध्यान करते समय साधक अर्थात् ध्याता लक्ष्य (ध्येय) में एकीकृत हो जाता है, उसे समाधि कहते हैं।

पंचज्ञानेन्द्रियों से उत्पन्न अभिप्रेरकों का नियंत्रण, धारणा, ध्यान, समाधि से होता है। अतः अभिप्रेरकों पर अंकुश होने से व्यक्ति के व्यवहार या अधिगम की प्रक्रिया तीव्र होती है।

⁹ गोयन्दका, हरिकृष्णदास. *महर्षि पतंजलि कृत योगदर्शन (योगसूत्र)* 37वाँ पुनर्मुद्रण. गोरखपुर : गीताप्रेस. पृ. 74.

अधिगम तथा अभिप्रेरण से संबंधित योग दर्शन में निहित उपाय

“ततः प्रत्यक्चेतनाधिगमोऽप्यन्तरायाभावश्च ।”¹⁰

साधना के मार्ग में व्यक्ति को ईश्वर की प्राप्ति के लिए अनेक विघ्नों का सामना करना पड़ता है। अतः इन विघ्नों से निवृत्ति के लिए योग दर्शन में प्रणव जप व ईश्वर प्रणिधान का महत्व है। प्रणव का जाप करने से ओम की तरंगे व्यक्ति के मस्तिष्क में पहुँचती हैं, जिसके द्वारा व्यक्ति में व्याप्त नकारात्मक ऊर्जा का क्षरण होता है एवं सकारात्मक ऊर्जा की अभिवृद्धि होती है। जिससे साधक का मन स्थिर होता है।

ठीक इसी तरह ईश्वर प्रणिधान में व्यक्ति अपने किये हुए कर्मों को ईश्वर में समर्पित करता है, जिससे व्यक्ति बुरे विचारों से धीरे-धीरे मुक्त होकर अध्यात्म मार्ग में अग्रसर होता है।

प्रणव जप तथा ईश्वर प्रणिधान से साधक अपने स्वरूप में स्थित होता है तथा अध्यात्म मार्ग में विघ्नों का शमन होता है तथा व्यक्ति अध्यात्म मार्ग में आगे बढ़ने के लिए प्रेरित होता है, व्यक्ति बुरे विचारों से मुक्त होकर उसके हृदय में अच्छे विचारों की स्थापना होती है, एवं उसके सकारात्मक विचारों का व्यवहार में परिग्रहण लंबे समय तक होता है। यह सब अभ्यास के द्वारा ही संभव है।

5.1.3 चित्तवृत्ति निरोध एवं स्मरण—विस्मरण

व्यक्ति द्वारा वर्तमान में किये गए कार्य का जब समापन होता है, तथा उस कार्य के पूर्व अनुभवों को अपनी स्मृति में लाना ही स्मरण है। यद्यपि गुजरते वक्त के साथ-साथ स्मृति में संचित पूर्व अनुभव व्यक्ति धीरे-धीरे भूलने लगता है, जो आयु में अभिवृद्धि के साथ भी संभव है। विस्मरण की प्रक्रिया में पूर्व अनुभवों को स्मृति में लाना संभव नहीं हो पाता, जिसके दौरान स्मृति में पूर्व अनुभवों को याद करने की प्रक्रिया तथा धारण क्षमता कम हो जाती है।

¹⁰ पातंजल योगसूत्र— 1/29

योगदर्शन में स्मृति का स्वरूप

“अनुभूतविषयासम्प्रमोषः स्मृतिः।”¹¹

प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा इन चार वृत्तियों से जो अनुभव मनुष्य को प्राप्त होते हैं, उनके संस्कार चित्त में रह जाते हैं, तथा किसी निमित्त को पाकर यह संस्कार फिर जाग्रत होकर मनुष्य को स्मरित होते हैं, तो इन पाँच वृत्तियों द्वारा व्यक्ति को स्मरित हुए संस्कारों का न भूलना ही स्मृति है।

यदि संस्कार अक्लिष्ट हों, तो मनुष्य को अध्यात्म मार्ग की ओर अग्रसर कराते हैं, तथा वासना या संस्कार क्लिष्ट हों तो व्यक्ति पाप की ओर अग्रसर होता है।

मनोविज्ञान में मन के विकारों को कम करने के लिए, योगदर्शन में निहित उपाय

मनुष्य में सकारात्मक तथा नकारात्मक वृत्तियों की दो धाराएँ बहती हैं, चूँकि पश्चिमी मनोवैज्ञानिक मन के विकारों को दूर करने के लिए कोई सम्भावित उपाय का समाधान खोजने में अभी तक निश्चित सफलता प्राप्त नहीं कर पाये हैं। इसलिए पातंजल योग शास्त्र खुद ही एक मनोवैज्ञानिक है, इसलिए इन विकारों को दूर करने में पातंजल योग-शास्त्र स्वयं ही मार्गदर्शक के रूप में उभर कर आये हैं। मनुष्य में व्याप्त नकारात्मक विचारों को सकारात्मक विचारों में बदलने के लिए अभ्यास एवं वैराग्य एक सर्वोत्तम उपाय है। अभ्यास द्वारा नकारात्मक विचारों को सकारात्मक में परिवर्तित करने के लिए बार-बार व्यक्ति को अभ्यस्त होना होता है। इन सतत् प्रयासों के परिणामस्वरूप मनुष्य का चित्त धीरे-धीरे नकारात्मक विचारों से मुक्त होकर वैराग्य की ओर अग्रसर होता है, किन्तु यह इतना आसान नहीं है, इसमें व्यक्ति का मन नकारात्मक विचारों से मुक्त होकर ईश्वर की ओर अग्रसर होता है।

यम, नियम, आसन एवं प्राणायाम से व्यक्ति के बाह्य आचरण की शुद्धि होती है तथा इसका सीधा संबंध मन से भी होता है, जिससे स्मृति में सकारात्मक परिवर्तन होते हैं और मनुष्य की स्मृति में सत्त्व गुण बढ़ता है तथा मनुष्य की आयु बढ़ने से सत्त्व गुण के कारण

¹¹ पातंजल योगसूत्र- 1/11

स्मृति में विस्मरण की मात्रा कम हो जाती है। स्मृति में नकारात्मक अनुभव से नकारात्मक विचार जन्म लेते हैं, जो मनुष्य की स्मृति में स्मरण क्षमता की दर को कम कर देते हैं तथा प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि का संबंध मनुष्य की मानसिक अवस्था से है, जिससे साधक के चित्त में उठ रही वृत्तियाँ धीरे-धीरे कम हो जाती हैं, और साधक अध्यात्म मार्ग की ओर अग्रसर होता है एवं भूतकाल में जो भी बातें साधक भूल जाता है, उन बातों का स्मरण व्यक्ति को होने लगता है। मनुष्य की चेतना ईश्वर से जुड़ जाती है, और व्यक्ति की चेतना का, ईश्वर से संबंध होने के कारण साधक का मन ईश्वर के ध्यान एवं मनन में ही गुजरता है।

मनुष्य जब अष्टांग योग का पालन करता है, तो उन विघ्नों के विपरीत सकारात्मक भावना रखनी चाहिए। जिससे व्यक्ति का मन अक्लिष्ट भावना तथा विचारों से युक्त होता है।

ईश्वर-प्रणिधान (अर्थात् व्यक्ति द्वारा किये हुए निष्काम कर्मों को ईश्वर के चरणों में अर्पित कर देना), प्रणव जप, एकतत्त्व अभ्यास अर्थात् किसी वस्तु विशेष में चित्त को ठहराने से मनुष्य के अंतःकरण में नकारात्मक ऊर्जा का क्षरण होने से उसकी जगह सकारात्मक ऊर्जा की स्थापना होती है, जिससे मनुष्य का मन एवं मस्तिष्क शांत होता है।

“मैत्रीकरुणामुदितोपेक्षाणां सुखदुःखपुण्यापुण्यविषयाणां भावनातश्चित्तप्रसादनम्।”¹²

मनुष्य जब सुखी मनुष्यों से मित्रता करता है, दुःखी व्यक्ति से दया का भाव रखता है, पुण्य व्यक्तियों से प्रसन्नता का तथा पापी व्यक्तियों से उपेक्षा का भाव रखता है, तब ऐसे साधक के अन्दर व्याप्त नकारात्मक ऊर्जा का स्तर कम होकर सकारात्मक ऊर्जा की अभिवृद्धि होती है।

जब व्यक्ति के अन्दर पाप रूपी क्लिष्ट वृत्तियाँ जो रज एवं तम गुण से युक्त होती हैं, तब मनुष्य का स्वभाव क्रोध एवं आलस्य से युक्त होता है। यदि ऐसे व्यक्ति का मन क्रोध से युक्त हो तो प्राणायाम के द्वारा व्यक्ति अपनी ऊर्जा की दिशा को मोड़कर सकारात्मक दिशा में परिवर्तित कर सकता है। जिससे व्यक्ति का चित्त भी परिवर्तित हो जाता है।

¹² पातंजल योगसूत्र- 1/33

5.1.4 चित्तवृत्ति निरोध एवं चिन्तन

मनुष्य का स्वभाव ही चिन्तन करना है तथा बड़ी-बड़ी समस्याओं का समाधान चिन्तन द्वारा ही संभव होता है।

“वारेन (Warren, 1934) के अनुसार, “चिन्तन एक प्रतीकात्मक स्वरूप की विचारात्मक प्रक्रिया है, जिसका प्रारंभ व्यक्ति के सामने उपस्थित किसी समस्या से होता है। इसमें व्यक्ति की समस्या तथा मानसिक वृत्ति से संबंध कुछ प्रयत्न और त्रुटि की क्रियाएँ होती हैं और अन्त में समस्या का समाधान या निष्कर्ष प्राप्त होता है।”¹³

योगदर्शन में चिन्तन का स्वरूप

मनुष्य के सामने जब कोई विकट समस्या आती है, तो उस समस्या के समाधान के लिए मनुष्य निरन्तर चिन्तन करता है। चिन्तन की प्रक्रिया में मनुष्य के मन में विचारों का निरन्तर आवागमन होता है। कभी-कभी कुछ समस्याओं का निदान होता है और कुछ समस्याएँ ऐसी होती हैं, जिसमें मनुष्य उलझ जाता है। इन गहन कोटि की समस्याओं को सुलझाने के लिए मनुष्य गहन विचार करता है, जिसके परिणामस्वरूप व्यक्ति के स्वास्थ्य पर बुरा असर पड़ता है।

इन समस्याओं के समाधान के लिए मनुष्य को गहन रूप से स्व-अध्ययन करना और मोक्ष रूपी शास्त्रों का अध्ययन करना चाहिए। जिससे व्यक्ति अपने भीतर सकारात्मक व नकारात्मक पक्ष की पहचान कर सके। नकारात्मक विचारों को दूर करने के लिए मनुष्य को प्राणायाम, प्रणवजप का उच्चारण, ध्यान साधना करना चाहिए जिससे मनुष्य को समस्या व घटना को सुलझने में सामर्थ्य प्राप्त होता है। कभी-कभी कुछ समस्याएँ या घटनाएँ ऐसी होती हैं, जो मनुष्य के अन्दर क्रोध उत्पन्न करती है और क्रोध को नियन्त्रण में लाने के लिए प्राणायाम और ध्यान काफी मददगार साबित होता है, जो मनुष्य के तनाव को कम करता है।

¹³ सिंह, अरुण कुमार, सिंह, आशीष कुमार. (2002). *सरल सामान्य मनोविज्ञान*. तृतीय संस्करण. दिल्ली : मोतीलाल बनारसीदास. पृ. 125.

क्रोध की अनियन्त्रित दशा को श्वास के आवागमन की गिनती की दिशा में मोड़ दिया जाता है। जिससे मनुष्य का क्रोध शान्त हो जाता है।

प्राण तथा मन आपस में जुड़े रहते हैं, प्राण अर्थात् प्राणायाम करने से हमारा मन क्रोध की दिशा में न जाकर प्राणायाम के अभ्यास पर जाता है। जब हमारा मन क्रोध से युक्त होता है तब प्राण भी अनियन्त्रित हो जाता है, जिसके फलस्वरूप प्राण का श्वास-प्रश्वास भी बढ़ने लगता है।

प्राण को नियन्त्रित अर्थात् कुम्भक करने से प्राण के श्वास-प्रश्वास पर नियन्त्रण आता है। जिसके फलस्वरूप प्राण नियन्त्रित होने पर, उसका प्रभाव मन पर भी पड़ता है। तथा मन शांत होता है।

मानसिक विकार का संबंध हिंसा से भी होता है।

स्वयं की हिंसा अर्थात् मन में नकारात्मक विकार उत्पन्न होने से उसका प्रभाव शरीर पर भी होता है।

जिसके फलस्वरूप मन दुर्बल होता है तथा शारीरिक विकार भी उत्पन्न होते हैं, जो मनोदैहिक के अन्तर्गत आते हैं।

स्वयं के द्वारा दूसरों की हिंसा करने पर मनुष्य का मन एवं शरीर विकारों से ग्रस्त हो जाता है। जिससे व्यक्ति का प्राण एवं मन सामर्थ्य विहीन हो जाता है।

अहिंसा के पालन से व्यक्ति के अन्दर सकारात्मक परिवर्तन आता है और मन एवं शरीर विकारों से ग्रसित नहीं होता।

5.1.5 चित्तवृत्ति निरोध एवं बुद्धि

मनोविज्ञान में बुद्धि से तात्पर्य व्यक्ति के आस-पास के वातावरण से समायोजन करने से है, जो व्यक्ति अपने आस-पास के वातावरण से जितना जल्दी संयोग करता है, वह उतनी जल्दी ही तीव्र बुद्धि का व्यक्ति माना जाता है।

कम बुद्धिमान व्यक्ति की यह विशेषता होती है, कि वह अपने आस-पास के वातावरण से जल्द संयोग नहीं कर पाता, तथा उस व्यक्ति के अपने आस-पास के वातावरण में संयोग करने से कई कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है।

बुद्धिमान व्यक्ति की एक विशेषता चिन्तन एवं मनन करने की क्षमता से है। बुद्धिमान व्यक्ति आने वाली समस्याओं को एक अवसर के रूप में देखते हैं। तीव्र बुद्धि वाले व्यक्ति हर समस्या पर मनन एवं चिन्तन के द्वारा प्रयत्न एवं त्रुटि के माध्यम से समस्या का उत्तर खोजते हैं।

प्रयत्न एवं त्रुटि में व्यक्ति के मन में अनगिनत विचार आते हैं, जो विचार समस्या से असंगत होता है, व्यक्ति उन विचारों को छोड़ते हैं तथा जो विचार समस्या से मेल खाते हैं, उस विचार को समस्या से जोड़कर हल निकाल लेता है। प्रयत्न एवं त्रुटि के माध्यम से व्यक्ति में समस्या के हल के साथ-साथ अधिगम की प्रक्रिया का भी विकास होता है।

बुद्धि के प्रकार

“मुख्यतः बुद्धि तीन प्रकार की होती है।”¹⁴

सामाजिक बुद्धि

मूर्त बुद्धि

अमूर्त बुद्धि

सामाजिक बुद्धि— सामाजिक बुद्धि से तात्पर्य समाज में रहने वाले व्यक्ति के व्यवहार को अपनी बुद्धि से समझकर उसके अनुरूप व्यवहार करना सामाजिक बुद्धि है।

मूर्त बुद्धि— मूर्त बुद्धि की पहचान मनुष्य जन्म के विकास के साथ-साथ करता है। मूर्त बुद्धि से तात्पर्य व्यक्ति के सामने मजबूत पदार्थों को छूकर पहचानने एवं उसके उपयोग से है।

¹⁴ सिंह, अरुण कुमार, सिंह, आशीष कुमार. (2002). *सरल सामान्य मनोविज्ञान*. तृतीय संस्करण. दिल्ली : मोतीलाल बनारसीदास. पृ. 161.

अमूर्त बुद्धि— अमूर्त बुद्धि से तात्पर्य व्यक्ति के तर्क-वितर्क, कठिन समस्याओं के चिन्तन द्वारा उनका हल निकालने से तथा गणितीय समस्याओं को समझने से है।

उदाहरणार्थ— “कला विद्वान, गणितज्ञ, पेन्टर आदि।”¹⁵

बुद्धि का योगदर्शन से सम्बन्ध

योगदर्शन में बुद्धि का संबंध राजसिक बुद्धि, तामसिक बुद्धि, सात्विक बुद्धि से है।

राजसिक बुद्धि तथा तामसिक बुद्धि का संबंध मल रूपी विकारों से है, जिससे व्यक्ति की बुद्धि में अशुद्धता उत्पन्न होती है। जिसके परिणामस्वरूप व्यक्ति में विवेक, शुद्धता रूपी गुणों का नाश होकर अज्ञानता जन्म लेती है। सात्विक बुद्धि के माध्यम से व्यक्ति सही व गलत के मध्य विवेक पूर्ण तरीके से निर्णय कर पाता है।

बुद्धि में व्याप्त अज्ञानता को दूर करने के लिए अष्टांग योग एवं प्रणव जप का अभ्यास करने से व्यक्ति की बुद्धि में मल रूपी दोषों का शमन होता है एवं व्यक्ति में सात्विक बुद्धि का उदय होता है, तथा साधक ईश्वर मार्ग की ओर अग्रसर होता है।

बुद्धि एवं प्रज्ञा

“निर्विचारवैशारद्योऽध्यात्मप्रसादः”¹⁶

एष धर्मः सनातनः

निर्विचार समाधि अर्थात् ध्येय के अभ्यास द्वारा जब योगी को सिद्धि प्राप्त होती है। तब साधक को वस्तु का वास्तविक स्वरूप का बोध होता है। निर्विचार समाधि के अभ्यास से पहले, साधक की बुद्धि रज तथा तम विकारों से युक्त होती है। इन अविद्या रूपी विकारों से साधक की बुद्धि भौतिक बन्धनों के कारण जड़ता से युक्त होती है। वह सही व गलत में भेद करने में असमर्थ होता है।

यद्यपि निर्विचार समाधि के सतत् अभ्यास से मलीन विकारों का क्षय होता है तथा सत्त्व की वृद्धि होती है। सत्त्व की वृद्धि के कारण चित्त निर्मलता को प्राप्त होता है एवं प्रज्ञा की

¹⁵ सिंह, अरुण कुमार, सिंह, आशीष कुमार. (2002). *सरल सामान्य मनोविज्ञान*. तृतीय संस्करण. दिल्ली : मोतीलाल बनारसीदास. पृ. 162.

¹⁶ पातंजल योगसूत्र— 1/47

शुद्धि के कारण वस्तु के वास्तविक प्रतिबिंब का उदय होता है। शुद्ध बुद्धि की निर्मलता ही अध्यात्म प्रसाद का द्योतक है।

अध्यात्म प्रसाद में प्रवीणता हासिल करने वाला व्यक्ति हर विषम परिस्थिति को एक अवसर के रूप में देखता है। वह अपने आस-पास घटित होने वाली घटना के साथ-साथ, स्व (भीतर या अन्तः) में निर्मित होने वाली हर घटना के लिए सजग रहता है। उसकी बुद्धि में निर्णय करने की शक्ति का विकास होता है।

ऋतबुद्धि (प्रज्ञा) का परिणाम

“ऋतम्भरा तत्र प्रज्ञा”¹⁷

साधक को जब शुद्ध बुद्धि अथवा अध्यात्म प्रसाद की प्राप्ति होती है, तब ऐसे व्यक्ति की बुद्धि केवल और केवल ऋत रूपी सत्य को ही धारित करेगी। मिथ्या रूपी आवरण साधक की शुद्ध बुद्धि में बाधा का काम नहीं करती।

ऋत तथा सत्य दोनों में अन्तर है। “सत्य ज्ञान वस्तु, व्यक्ति, गुण, परिस्थिति के अनुसार बदल सकता है अर्थात् सापेक्ष हो सकता है लेकिन ऋत ज्ञान निरपेक्ष होता है। शाश्वत एवं नियमबद्ध है। इसलिए सृष्टि ऋत नियमों के आधार पर चलती है, क्योंकि यह न तो कभी बदलता है और न ही विपरीत होता है। यह त्रिकाल में सदैव सत्य ही रहता है।¹⁸

एष धर्मः सनातनः

“बुद्धि के दो प्रकार के कार्य हैं”¹⁹—

- 1) ज्ञान को धारण करना
- 2) ज्ञान का निश्चय करना

साधक की प्रज्ञा जब ऋत रूपी सत्य के वास्तविक स्वरूप का बोध करती है, जो कभी नहीं बदलती। ऐसी बुद्धि ऋत को ही धारित कर जो कि वास्तविक ज्ञान का द्योतक है,

¹⁷ पातंजल योगसूत्र— 1/48

¹⁸ <https://patanjaliyogasutra.in/samadhipada1-48/>

¹⁹ <https://patanjaliyogasutra.in/samadhipada1-48/>

साधक को अथक प्रसास करने की आवश्यकता नहीं होती, बल्कि उसे सहजता से उस यथार्थ ज्ञान का बोध होता है।

ऐसी योगी की ऋत (सत्य) आधारित बुद्धि माया रूपी जगत के अनसुलझे पहलुओं को आसानी से सुलझा लेती है। शुद्ध बुद्धि के द्वारा व्यक्ति से योगी अर्थात् आध्यात्मिक जगत में प्रवेश प्रारंभ करने के लिए व्यक्ति को धैर्य, आत्मबल, उमंग की उपलब्धि आत्मज्ञान प्राप्त करने के लिए सहजता से प्राप्त हो जाती है।

अतः ऋतम्भरा प्रज्ञा में निपुणता के लिए निर्विचार समाधि में दक्षता का होना अनिवार्य है। जिससे व्यक्ति के चित्त में रज तथा तम विकारों की मात्रा में कमी आती है, सात्विक बुद्धि जो कि ऋत से युक्त होती है, की अभिवृद्धि होती है।

ऋत बुद्धि की विशेषता –

“श्रुतानुमानप्रज्ञाभ्यामन्यविषया विशेषार्थत्वात्।”²⁰

ऋत से तात्पर्य सत्व आधारित बुद्धि अर्थात् वस्तु के वास्तविक स्वरूप का बोध होता है। इसे विशिष्ट बुद्धि के नाम से भी जाना जाता है। सत्व आधारित बुद्धि प्रकृति तथा पुरुष की पृथक्ता का परिणाम है। जिसमें चित्त का ऋत रूपी ज्ञान, बोध में परिणित हो जाता है। शब्द तथा अनुमान पर आधारित बुद्धि जो कि सामान्य ज्ञान का द्योतक है, यह ऋत आधारित बुद्धि से भिन्न है, क्योंकि यह विशिष्ट ज्ञान का बोध कराती है, तथा इसका बोध तभी संभव है। जब कोई साधक इस ऋत आधारित सत्व बुद्धि को प्राप्त करे। इस प्रकार की बुद्धि में विकारों का अभाव पाया जाता है। सत्व बुद्धि क्लिष्ट वृत्तियों का क्षय करके अक्लिष्ट वृत्ति को जन्म देती है तथा साधक को स्वतः ही इस बोध का ज्ञान होने लगता है।

²⁰ पातंजल योगसूत्र- 1/49

विवेक बुद्धि द्वारा आत्म विश्लेषण की प्रक्रिया –

“परिणामतापसंस्कारदुःखैर्गुणवृत्तिविरोधाच्च दुःखमेव सर्वं विवेकिनः।”²¹

“हेयं दुःखमनागतम्।”²²

“द्रष्टृदृश्ययोः संयोगो हेयहेतुः।”²³

“द्रष्टा दृशिमात्रः शुद्धोऽपि प्रत्ययानुपश्यः।”²⁴

“तदर्थ एव दृश्यस्यात्मा।”²⁵

“तस्य हेतुरविद्या।”²⁶

“तदभावात्संयोगाभावो हानं तद्दृशेः कैवल्यम्।”²⁷

“विवेकख्यातिरविप्लवा हानोपायः।”²⁸

इस संसार में विवेकी व्यक्ति के लिए सब दुःखमय है, वह आने वाले हर दुःख के लिए जागरूक होता है, और अब कौन सा दुःख उसके चित्त की दशा को अस्थिर करता है। इसके लिए आने वाले हर दुःख के प्रति सचेत रहते हुए उससे बचने का प्रयत्न करता है। व्यक्ति वर्तमानकालिन दुःख तथा भूतकालिक दुःख में कोई बदलाव नहीं कर सकता। वे सहन करने ही पड़ते हैं। परन्तु जो भविष्यकालिक दुःख है, उसका समाधान वर्तमान में अत्यन्त आवश्यक है। भविष्यकालिक दुःख भी साधक की दृष्टि में उस मकड़ी के जाले के समान होता है, जो आँखों में गिर जाने पर दुःख ही देता है। इसलिए योगी भविष्य में आने वाले दुःख के प्रति अति संवेदनशील होता है। इसलिए इस अनागत दुःख को अर्थात् जो दुःख अभी आया ही नहीं है, उसका समाधान अत्यन्त आवश्यक है, तथा इस दुःख का मूल कारण प्रकृति एवं पुरुष का संयोग है। जिसे अविद्या भी कहा जाता है। पुरुष अपनी शुद्ध चेतनता के रूप में जाना जाता है। लेकिन प्रकृति के जुड़ाव के कारण जैसे-जैसे चित्त में

²¹ पातंजल योगसूत्र- 2/15

²² पातंजल योगसूत्र- 2/16

²³ पातंजल योगसूत्र- 2/17

²⁴ पातंजल योगसूत्र- 2/20

²⁵ पातंजल योगसूत्र- 2/21

²⁶ पातंजल योगसूत्र- 2/24

²⁷ पातंजल योगसूत्र- 2/25

²⁸ पातंजल योगसूत्र- 2/26

वृत्तियाँ उठेंगी, द्रष्टा वैसा ही स्वरूप वाला अपने आप को समझेगा। अतः प्रकृति का स्वरूप पुरुष के लिए है, जो द्रष्टा को भोग एवं अपवर्ग के साधनों से परिपूर्ण करती है। जैसे-जैसे व्यक्ति में अज्ञान रूपी अविद्या का आवरण क्षीण होने लगता है, तब दुःख रूपी अविद्या अर्थात् प्रकृति एवं पुरुष का तादात्म्य पृथक् हो जाता है।

द्रष्टा तथा दृश्य के स्वरूप का अलगाव बंधन की निवृत्ति का द्योतक है तथा यही दुःख का नाश है। जिसे स्थिर ज्ञान अथवा विवेक ज्ञान के नाम से जाना जाता है। विवेक ज्ञान से युक्त साधक स्वयं के आत्मनिरीक्षण द्वारा इस बात का अन्वेषण करता है, कि उसका संबंध स्वयं से किस प्रकार है। इस प्रकार के आत्म-अन्वेषण की प्रक्रिया में उसे अभेद ज्ञान अर्थात् अद्वैत की प्राप्ति होती है, कि मैं प्रकृति तथा पुरुष अलग हूँ। जो शुद्ध चेतना का द्योतक है, तथा यही स्थिर ज्ञान कैवल्य का उपाय है।

विवेक ज्ञान से युक्त साधक की बुद्धि—

“तस्य सप्तधा प्रान्तभूमिः प्रज्ञा।”²⁹

विवेक ज्ञान से युक्त योगी की बुद्धि सात प्रकार की होती है।

प्रारम्भिक चार प्रकार की बुद्धि कार्यविमुक्तिप्रज्ञा की द्योतक है, जबकि अन्त की तीन बुद्धि चित्तविमुक्तिप्रज्ञा की द्योतक है।

कार्यविमुक्तिप्रज्ञा —

- 1) **ज्ञेयशून्य अवस्था**—साधक जब दुःख के स्वरूप को पूर्णतः जान लेता है, तब उसके जानने लायक कुछ भी शेष नहीं रहता।
- 2) **हेयशून्य अवस्था**—दुःख के हेतु (कारण) अर्थात् प्रकृति तथा पुरुष के संयोग का अभाव हो गया, अब कुछ भी क्षीण करने योग्य शेष नहीं बचा।
- 3) **प्राप्यप्राप्त अवस्था**—निरोध समाधि की प्राप्ति होने पर हान रूपी मोक्ष की प्राप्ति हो गई है।

²⁹ पातंजल योगसूत्र— 2/27

4) चिकीर्षाशून्य अवस्था—विवेक ज्ञान की प्राप्ति होने पर अब कुछ भी प्राप्त करना शेष नहीं रहा।

चित्तविमुक्तिप्रज्ञा

5) चित्त की कृतार्थता—प्रकृति का प्रयोजन पुरुष को भोग तथा मोक्ष की प्राप्ति कराना है। प्रकृति का मुख्य प्रयोजन मोक्ष की प्राप्ति कराना है। अतः दृश्य रूपी प्रकृति का यह कार्य पूरा हो चुका है।

6) गुणलीनता—प्रकृति का मोक्ष रूपी कार्य पुरुष के लिए जब पूर्ण हो जाता है, तब दृश्य का प्रतिप्रसव हो जाता है।

7) आत्मस्थिति—जब पुरुष का प्रकृति से जुड़ाव होता है, द्रष्टा का जब प्रकृति से अलगाव होता है तब द्रष्टा अपने स्व-स्वरूप में स्थित हो जाता है।

विवेकज्ञान प्राप्ति का उपाय —

“योगाङ्गनुष्ठानादशुद्धिक्षये ज्ञानदीप्तिराविवेकख्यातेः।”³⁰

योग के अंगों को अपने आचरण में लाने से अशुद्धियों का क्षय होता है। जिससे साधक की बुद्धि में सत्त्व बढ़ता है। सत्त्व बढ़ने से ज्ञान रूपी प्रकाश और अधिक निर्मल हो जाता है। जिसमें द्रष्टा अपने से भिन्न प्रकृति रूपी तत्त्वों से उसकी दीप्ति अलग प्रकाशित होती है।

साधक का कैवल्य की ओर अभिमुखता की स्थिति—

“तदा विवेकनिम्नं कैवल्यप्राग्भारं चित्तम्।”³¹

अविद्या के कारण मनुष्य का चित्त संसार की ओर निरंतर अभिमुख होता है। परन्तु जब साधक में ऋत रूपी सत्य ज्ञान का उदय होता है, उस समय योगी का चित्त सांसारिक विषयों से विमुख होने लगता है, तथा इस विमुखता के कारण व्यक्ति में विवेक ज्ञान का प्रवाह निरन्तर बना रहता है। तब योगी इस विवेक ज्ञान की निरन्तरता के कारण कैवल्य

³⁰ पातंजल योगसूत्र— 2/28

³¹ पातंजल योगसूत्र— 4/26

की ओर अग्रसर होता है, तथा उसके चित्त का प्रतिप्रसव होता है, एवं वह अपने स्वरूप में अवस्थित हो जाता है।

5.1.6 चित्तवृत्ति निरोध एवं व्यक्तित्व

मनोविज्ञान में “व्यक्तित्व का अंग्रेजी रूपान्तर ‘Personality’ है, जो लैटिन शब्द परसोना से बना है।”³²

प्रायः व्यक्तित्व की पहचान मनुष्य के बाहरी पहनावे के आधार पर की जाती थी। अगर व्यक्ति की वेशभूषा आकर्षक लगती थी, तो उसे अच्छा माना जाता था, किन्तु यदि व्यक्ति की वेशभूषा साधारण होती थी, तो उसे नकारात्मक या बुरे दृष्टिकोण से देखा जाता था। समय परिवर्तन के साथ-साथ मनुष्य के व्यक्तित्व पर कई शोध किये गये, जो मनुष्य के मानसिक तथा शारीरिक दोनों का समन्वयात्मक केन्द्र बिन्दु था।

ऐसा व्यक्ति मानसिक एवं शारीरिक समन्वय के अनुसार हर परिस्थिति में अपने आप को ढाल लेना, अच्छे व्यक्तित्व का द्योतक है।

अधिकतर व्यक्तियों में व्यक्तित्व का गुण अलग-अलग होता है, जो वातावरण एवं परिस्थिति के अनुसार अलग-अलग होता है। “व्यक्ति के आचार-विचार, व्यवहार, क्रियाएं, और गतिविधियों में व्यक्ति का व्यक्तित्व झलकता है।”³³

योगदर्शन में व्यक्तित्व का स्वरूप

साधारण मनुष्यों में प्रायः भोग से युक्त व्यक्तित्व का स्वरूप पाया जाता है, जो कि अविद्या जनित होती है।

भोगियों के व्यक्तित्व के स्वरूप को थोड़ा बदलना कठिन होता है, क्योंकि भोग रूपी मनुष्यों के चित्त में पूर्व जन्मों के अनन्त संस्कार समाहित रहते हैं।

³² सिंह, अरुण कुमार, सिंह, आशीष कुमार. (2002). *सरल सामान्य मनोविज्ञान*. तृतीय संस्करण. दिल्ली : मोतीलाल बनारसीदास. पृ. 171.

³³ hi.m.wikipedia.org

इन मलीन रज एवं तम रूपी संस्कारों को कम करके तथा सत्व रूपी संस्कारों को उदय करने के लिए निरन्तर अभ्यास एवं वैराग्य रूपी साधनों का उपयोग किया जाता है।

अभ्यास के द्वारा चित्त को रज एवं तम रूपी मलीनता को कम करके चित्त में सत्व की प्रशांत वाहिता स्थिति को समत्व में बनाये रखना पड़ता है। निरन्तर ईश्वर के जाप, क्रियायोग, बहिरंग, एवं अंतरंग साधनों से, प्रणव जप तथा चित्त प्रसादनों के माध्यम से व्यक्ति के अन्दर रज एवं तम रूपी विक्षेपों को कम करके सत्व की स्थिति को उभारना होता है।

जिसके फलस्वरूप सामान्य व्यक्ति भोग रूपी भावना को छोड़कर योग मार्ग पर आरुढ़ होता है और फिर एक ध्येय ईश्वर की प्राप्ति में लगा रहता है, जिससे उसके व्यक्तित्व में सकारात्मक परिवर्तन आता है।

5.1.7 चित्तवृत्ति निरोध एवं अवधान

मनुष्य की ज्ञानेन्द्रियाँ जब बाह्य उद्दीपकों के साथ सम्पर्क में आती है, तो व्यक्ति अधिकांश अपनी रुचि के अनुसार उन उद्दीपकों के प्रति अनुक्रिया करता है।

उद्दीपकों की इच्छानुसार अनुक्रिया करने की यह प्रक्रिया अवधान कहलाती है।

“अवधान एक चयनात्मक मानसिक प्रक्रिया है, जिसमें व्यक्ति एक विशेष शारीरिक मुद्रा बनाकर किसी वस्तु को चेतना केन्द्र में लाने के लिए तत्पर रहता है।”³⁴

अवधान के प्रकार

“अवधान कई तरह के होते हैं, जिनमें से कुछ निम्न प्रकार के हैं।”³⁵

ऐच्छिक ध्यान

अनैच्छिक ध्यान

अभ्यस्त ध्यान

³⁴ सिंह, अरुण कुमार, सिंह, आशीष कुमार. (2002). *सरल सामान्य मनोविज्ञान*. तृतीय संस्करण. दिल्ली : मोतीलाल बनारसीदास. पृ. 73.

³⁵ सिंह, अरुण कुमार, सिंह, आशीष कुमार. (2002). *सरल सामान्य मनोविज्ञान*. तृतीय संस्करण. दिल्ली : मोतीलाल बनारसीदास. पृ. 75.

ऐच्छिक ध्यान— ऐच्छिक ध्यान की प्रक्रिया में व्यक्ति की इच्छा महत्वपूर्ण प्रधानता रखती है। वह अपनी इच्छानुसार किसी भी वस्तु पर ध्यान लगा सकता है।

अनैच्छिक ध्यान— बिना इच्छा से जब कोई व्यक्ति किसी वस्तु पर ध्यान लगाता है, तो वह अनैच्छिक ध्यान होता है।

उदाहरणार्थ— कोई व्यक्ति मन ही मन किसी चीज़ की पढ़ाई कर रहा होता है, तब पड़ोस से अचानक तेज गाने की आवाज़ से व्यक्ति का मन उस गाने की तरफ चला जाता है।

अभ्यस्त ध्यान— अभ्यस्त ध्यान से तात्पर्य व्यक्ति का ध्यान उसकी आदत से संबंधित होता है।

उदाहरणार्थ— अध्यापक का ध्यान सिर्फ ओर सिर्फ बच्चों को पढ़ाने में होता है।

ध्यान तथा क्रियायोग के द्वारा क्लेशों का प्रतिप्रसव—

“तपः स्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि क्रियायोगः।”³⁶

“ध्यानहेयास्तद्वृत्तयः।”³⁷

“ते प्रतिप्रसवहेयाः सूक्ष्माः।”³⁸

व्यक्ति को अपने ध्यान को ईश्वर के साथ सुदृढ़ करने के लिए सर्वप्रथम क्लेशों को क्रियायोग के माध्यम से अतिसूक्ष्म बना लेना चाहिए। यह स्थूल वृत्तियाँ, सूक्ष्म अवस्था में आने के पश्चात् इनका पूर्णतः प्रतिप्रसव नहीं हो पाता बल्कि प्रबल आलंबन प्राप्त होने पर ये वृत्तियाँ पुनः जाग्रत हो जाती हैं। अतः ध्यान के माध्यम से इन सूक्ष्म वृत्तियों को क्षीण करने का प्रयास किया जाता है, तथा जब सूक्ष्म रूपी प्रसंख्यान अर्थात् विवेकख्याति द्वारा दग्धबीज कर दी जाती हैं, तब इनका प्रबल आलंबन होने पर भी पुनः प्रस्फुटीकरण संभव नहीं हो पाता।

³⁶ पातंजल योगसूत्र— 2/1

³⁷ पातंजल योगसूत्र— 2/11

³⁸ पातंजल योगसूत्र— 2/10

इन दोनों (क्रियायोग तथा ध्यानयोग) के द्वारा क्लेशों को दग्धबीज कर दिया गया, जिसके उपरान्त चित्त के साथ-साथ क्लेशों का भी प्रतिप्रसव हो जाता है।



उपसंहार

उपसंहार

योगदर्शन में समाहित मनोविज्ञान मन पर केंद्रीभूत है, मन पर केंद्रीभूत होने के साथ-साथ ज्ञान पर आधारित है।

हमारी जो भी मानसिक क्रिया होती है, ज्ञान अथवा संस्कार के माध्यम से उसका प्रकटीकरण होता है।

व्यक्ति के संस्कार प्रकृति की दृष्टि से राजसिक एवं तामसिक होते हैं, तथा उसी के अनुरूप व्यक्ति के संस्कार बनते हैं।

जिसके फलस्वरूप मानसिक, वाचिक व शरीर के अनुरूप वह क्रिया करता है। कुछ क्रियाएँ मनुष्य के लिए कल्याणकारी होती हैं तथा कुछ क्रियाएँ अकल्याणकारी होती हैं। जो मनुष्य के चित्त को अशुद्ध करती है। आधुनिक मनोविज्ञान में चित्त को शुद्ध करने के लिए कोई उपाय निहित नहीं है।

जबकि योगदर्शन में निहित मनोविज्ञान में मनुष्य के चित्त की शुद्धि के उपाय बतलाये गये हैं। चित्त की शुद्धि होने से उसके व्यक्तित्व व आचरण में समग्र रूप से विकास होता है। तब व्यक्तित्व व आचरण में विकास के साथ-साथ मनुष्य विषम परिस्थितियों का सामना डटकर कर पाता है।

योग मनोविज्ञान तथा मनोविज्ञान चित्त तथा मन के एक ही स्वरूप का प्रतिपादन करते हैं। जहाँ मनोविज्ञान की समाप्ति मन के अवसान तक ही सीमित है, जबकि योग मनोविज्ञान के संदर्भित ग्रंथ पातंजल योगसूत्र में चित्त के विकास की मनोवैज्ञानिक पद्धतियों का स्तर, आधुनिक मनोविज्ञान में मन से कहीं अधिक ऊपर है। आधुनिक मनोविज्ञान मन में उत्पन्न विकारों का शमन कर योग के लिए मात्र स्वस्थ ही बना सकता है। मन के स्तर पर यदि देखा जाये तो विकारों का शमन सिर्फ रासायनिक दवाइयों के लेने तक ही निर्भर है। जबकि योग मनोविज्ञान में समाहित विभिन्न पद्धतियाँ मन को पूर्ण रूपेण स्वस्थ बनाकर, व्यक्ति को समाज में रहना एवं सुव्यवस्थित आचरण करना सिखाती है।

मनोविज्ञान में व्याप्त विभिन्न पद्धतियाँ जैसे – चिंतन, अधिगम, स्मरण, विस्मरण, स्मृति, अवधान आदि का स्वरूप कहीं न कहीं योग, सूत्र जो अपने आप में मनोविज्ञान का स्वरूप है, संबंध रखता है। मनोविज्ञान में विभिन्न पद्धतियों को जब योग मनोविज्ञान से जोड़ा जाता है, तब एक अलग ही स्वरूप उभर कर आता है।

पातंजल योगसूत्र में समाहित यौगिक पद्धतियों को अपनाकर मनुष्य मन नकारात्मक भावना को धीरे-धीरे शमन कर, सकारात्मक रूप धारण कर लेता है। ओम का बार-बार जप करने से मनुष्य का चित्त शांत होता है, तथा उसके मन से नकारात्मक भावना नष्ट हो जाती है। नकारात्मकता से रिक्त स्थान को सकारात्मक भावना ग्रहण कर लेती है। जिससे मनुष्य का आचरण परिशुद्ध होता है, एवं साधक जो पहले साधारण व्यक्ति था उसमें सात्विक विचारों का उदय होता है। रज एवं तम रूपी विकारों का स्तर धीरे-धीरे कम होता है। चित्त की वृत्तियों का निरोध पूर्ण योगियों का होता है, परन्तु साधारण मनुष्य के मन के विकारों को दूर करने के लिए अष्टांग योग के छोटे-छोटे नियमों का परिपालन कर अपने चित्त की वृत्तियों को शुद्ध कर सकता है। इन्हीं नियमों के परिपालन से व्यक्ति में मानसिक शुद्धता का विकास होता है। मानसिक शुद्धता होने से उसकी वृत्ति में क्लिष्ट वृत्तियों का शमन होकर, नई अक्लिष्ट वृत्तियों का उदय होता है।

अक्लिष्ट वृत्तियों के उद्गम से मनुष्य का व्यवहार दूसरों के प्रति नैतिक एवं हृदय में दूसरों के लिए करुणा, प्रेम को जन्म देती है। यही करुणा तथा प्रेम मनुष्य के अन्दर व्यवस्थित हॉर्मोन्स का स्रावण कर, व्यक्ति के अन्तःकरण को शुद्ध बनाती हैं, तथा मानव की यही यात्रा महामानव पर जाकर खत्म होती है। महामानव में अंतःकरण से उठी हुई करुणा की बात ही अलग है। प्रायः मनुष्य जब दूसरों के प्रति घृणा तथा द्वेष की भावना रखता है, वहीं उसके मन में विकृति उत्पन्न होती है तथा इस विकृति के स्तर को योग मनोविज्ञान कम करता है। इस विकृति के कम होने से ही चित्त परिशुद्ध होता है। जो योग एवं मनोविज्ञान का मनोवैज्ञानिक आधार है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

संदर्भ ग्रंथ सूची

आधार ग्रंथ

1. डॉ० श्रीवास्तव, सुरेशचंद्र. (2018). *पातंजलयोगदर्शनम्. संस्करण.* वाराणसी : चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन.
2. स्वामी, तीर्थ, ओमानन्द. सं. (2072). *पातंजलयोगप्रदीप.* गोरखपुर : गीताप्रेस.
3. आर्य, सतीश. (2016), *पातंजल योगदर्शन (व्यासभाष्य एवं भोजवृत्ति सहित).* दिल्ली : परिमल पब्लिकेशन.
4. प्रो० शास्त्री, ज्ञानप्रकाश, प्रो० भारद्वाज, ईश्वर. (2019). *महर्षि पतंजलिकृत योगसूत्र.* संस्करण. दिल्ली : परिमल पब्लिकेशन.
5. श्रीमत आरण्य, स्वामी हरिहरानन्द. (2017). *पातंजल योगदर्शन.* नवम् पुनर्मुद्रण. दिल्ली : मोतीलाल बनारसीदास.
6. गोयन्दका, हरिकृष्णदास. सं. (2074). *महर्षि पतंजलिकृत योग—दर्शन.* गोरखपुर : गीताप्रेस.
7. पं० शर्मा, श्री राम. (2011). *सांख्य एवं योगदर्शन.* मथुरा : युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट.
8. डॉ० पण्डया, प्रणव, (2015). *अन्तर्जगत की यात्रा का ज्ञान—विज्ञान (खण्ड—1, 2, 3, 4).* हरिद्वार : श्री वेदमाता गायत्री ट्रस्ट.
9. पं० शर्मा, श्री राम. (1998). *साधना पद्धतियों का ज्ञान और विज्ञान.* द्वितीय संस्करण. मथुरा : अखण्ड ज्योति संस्थान.
10. गोयन्दका, जयदयाल. सं. (2073). *श्रीमद्भगवद्गीता (तत्त्वविवेचिनी हिन्दी—टीका).* गोरखपुर : गीताप्रेस.
11. मुनिलाल. सं. (2073). *विवेक—चूडामणि.* गोरखपुर : गीताप्रेस.
12. *योगांक.* सं. (2073). तेरहवाँ पुनर्मुद्रण. गोरखपुर : गीताप्रेस.

13. डॉ० भट्टाचार्य, रामशंकर, डॉ० सिंह, अमलधारी. (2018). **भोजदेवकृत राजमार्तण्यवृत्तिसमेतम् पातंजलयोगसूत्रम्**. प्रथम संस्करण. दिल्ली : भारतीय विद्या प्रकाशन.
14. डॉ० कर्णाटक, विमला. (1992). **पातंजलयोगदर्शनम् (तत्त्ववैशारदी-योगवार्तिकेतिटीकाद्वयोपेतं व्यासभाष्यम्) प्रथम आवृत्ति (भाग-1, 2, 3, 4)**. वाराणसी : रत्ना पब्लिकेशन्स.
15. स्वामी, प्रभुपाद. (1990). **श्रीमद्भगवद्गीता यथारूप**. मुंबई : भक्ति वेदांत ट्रस्ट.
16. पं० शर्मा, श्रीराम. (1998). **व्यक्तित्व विकास हेतु उच्चस्तरीय साधनाएँ**. द्वितीय संस्करण. मथुरा : अखण्ड ज्योति संस्थान.
17. पं० शर्मा, श्री राम. (2013). **चेतन, अचेतन एवं सुपर चेतन मन**. संशोधित संस्करण. मथुरा : अखण्ड ज्योति संस्थान.
18. पं० शर्मा, श्री राम. (2015). **ब्रह्मविद्याखण्ड (108 उपनिषद्)**. मथुरा : युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट.
19. बुद्धवाणी के परिप्रेक्ष्य में. (2016). **पातंजल योगसूत्र**. पुनर्मुद्रण. धम्मगिरी : विपश्यना विशोधन विन्यास.
20. **श्रीमद्भगवद्गीता**. सं. (2067). गोरखपुर : गीताप्रेस
21. **श्रीमद्भगवद्गीता (श्लोकार्थ सहित)**. सं. (2076). गोरखपुर : गीताप्रेस

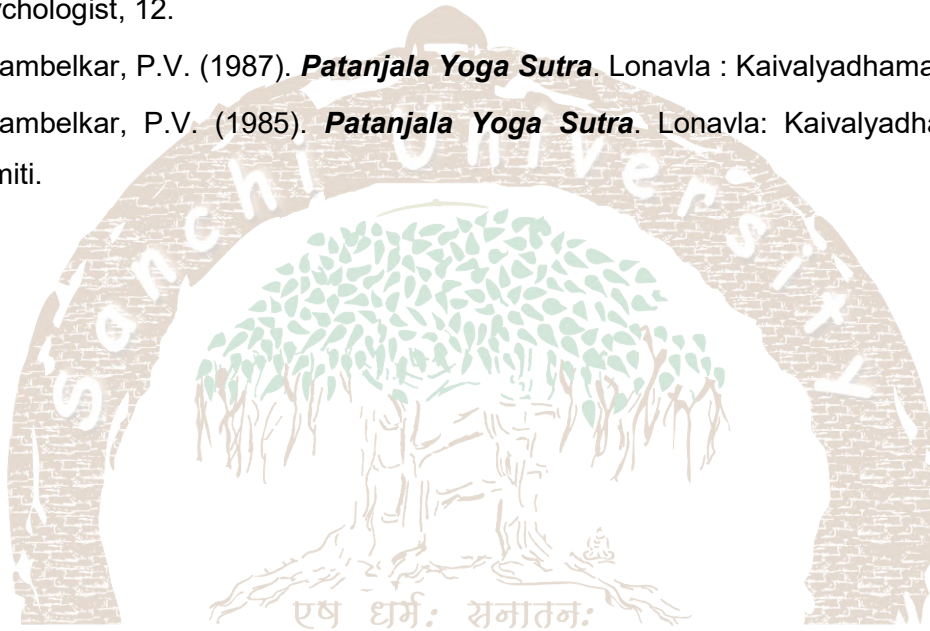
सहायक ग्रंथ

1. सरस्वती, स्वामी सत्यानन्द. (2013). *मुक्ति के चार सोपान*. द्वितीय संस्करण. मुंगेर (बिहार): योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट.
2. डॉ० करंबेलकर, पु. वि. (2012). *पातंजलयोग-सूत्र*. तृतीय संस्करण. कैवल्यधाम (लोणावला) : जिला पुणे द्वारा प्रकाशित.
3. आयंगर, बी. के. एस. (2019). *पतंजलि योग सूत्र*. संस्करण. दिल्ली : प्रभात पेपर बैक्स.
4. दशोरा, नंदलाल. (2014). *महर्षि पतंजलिकृत पातंजल योगसूत्र (योगदर्शन)*. संस्करण. हरिद्वार : रणधीर प्रकाशन.
5. श्री, स्वामी अङ्गदानन्दजी. (2018). *योगदर्शन (महर्षि पतंजलिकृत)*. पुनः प्रकाशित. मुंबई : श्री परमहंस स्वामी अङ्गदानन्दजी आश्रम ट्रस्ट.
6. डॉ० कुमार, हरीश. (2020). *योग-सिद्धांत संग्रह*. गाजियाबाद : राधा प्रेस.
7. स्वामी विवेकानंद. (2020). *पातंजल योगसूत्र*. प्रथम संस्करण. दिल्ली : कुतुब पब्लिकेशन्स.
8. सरस्वती, स्वामी सत्यानन्द. (2013). *बच्चों के लिए योग शिक्षा 1*. द्वितीय संस्करण. मुंगेर (बिहार) : योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट.
9. सरस्वती, स्वामी निरंजनानंद. (2012). *प्राण एवं प्राणायाम*. प्रथम प्रकाशन. मुंगेर (बिहार) : योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट.
10. सिंह, अरुण कुमार. (2017). *उच्चतर सामान्य मनोविज्ञान*. परिवर्द्धित संस्करण. दिल्ली : मोतीलाल बनारसीदास.
11. सिंह, अरुण कुमार. सिंह, अशीष कुमार. (2017). *आधुनिक सामान्य मनोविज्ञान*. ग्यारहवाँ संशोधित संस्करण. दिल्ली : मोतीलाल बनारसीदास.
12. सिंह, अरुण कुमार. (2016). *आधुनिक असामान्य मनोविज्ञान*. दिल्ली : मोतीलाल बनारसीदास.

13. बैरन, रॉवर्ट ए. (2015). **मनोविज्ञान**. प्रथम मुद्रण. नोएडा : पियर्सन इंडिया एजुकेशन सर्विसेज प्राइवेट लिमिटेड.
14. सिंह, अरुण कुमार. सिंह, अशीष कुमार. (2019). **मनोविज्ञान के संप्रदाय एवं इतिहास**. नवम् पुनर्मुद्रण. दिल्ली : मोतीलाल बनारसीदास.
15. डॉ० पाण्डेय, रामप्रसाद. (2012). **सामान्य मनोविज्ञान**. पहला संस्करण. दिल्ली : राजकमल प्रकाशन.
16. सिंह, अरुण कुमार. सिंह, अशीष कुमार. (2002). **सरल सामान्य मनोविज्ञान**. तृतीय संशोधित संस्करण. दिल्ली : मोतीलाल बनारसीदास.
17. शर्मा, रामनाथ., शर्मा, रचना. (2005). **भारतीय मनोविज्ञान**. दिल्ली : एटलांटिक पब्लिशर्स.
18. डॉ० पाठक, आर.पी. (2009). **भारतीय मनोविज्ञान**. पहला संस्करण. दिल्ली : राधा पब्लिकेशन्स.
19. डॉ० जायसवाल, सीताराम. (2004). **भारतीय मनोविज्ञान और शिक्षा**. तृतीय संस्करण. दिल्ली : आर्य बुक डिपो.
20. प्रो. द्राविड, नारायण शास्त्री., डॉ० चौरसिया, राजेश कुमार. (2007). **भारतीय मनोविज्ञान**. सर्वोद्धित संस्करण. सागर : विश्वविद्यालय प्रकाशन.
21. वर्णबाल, सुरेश. (2010). **योग और मानसिक स्वास्थ्य**. द्वितीय संस्करण. दिल्ली : न्यू भारतीय बुक कार्पोरेशन.
22. डॉ० रूपम. (2017). **योग मनोविज्ञान**. द्वितीय संस्करण. दिल्ली : मोतीलाल बनारसीदास.
23. शेरजंग, निर्मला. (1954). **मनोविज्ञान**. प्रथम संस्करण. बनारस : सरस्वती प्रेस बनारस.
24. पाठक. पी.डी. (1975). **शिक्षा मनोविज्ञान**. छठा संस्करण. आगरा : विनोद पुस्तक मंदिर.

25. सुलैमान, मुहम्मद., खान, अजीजुर्हमान खान. (1989). *आधुनिक सामान्य मनोविज्ञान*. पटना : शुक्ला बुक डिपो.
26. अजीमुर्रहमान. (1990). *सामान्य मनोविज्ञान*. दिल्ली : मोतीलाल बनारसीदास.
27. सिन्हा प्रसाद, राज राजेश्वरी., मिश्र. वी.के. (1987). *असामान्य मनोविज्ञान*. पटना : भारती भवन पब्लिशर्स एवं डिस्ट्रीब्यूटर्स.
28. लाल, कुमार बसंत. (1998). *समकालीन भारतीय दर्शन*. दिल्ली : मोतीलाल बनारसीदास.
29. डॉ० कृष्णन, राधा. *भारतीय दर्शन*. दिल्ली : राजपाल एण्ड सन्स.
30. सिंह अरुण कुमार (1998). *समकालीन भारतीय दर्शन*. दिल्ली : मोतीलाल बनारसीदास.
31. स्वामी विवेकानंद. (1995). *राजयोग*. नागपुर : रामकृष्ण मठ.
32. स्वामी विवेकानंद. (1950). *कर्मयोग*. नागपुर : रामकृष्ण मठ.
33. स्वामी विवेकानंद (1947). *भक्तियोग*. नागपुर : रामकृष्ण मठ.
34. Kumar, Kamakhya. (2013). *Yoga Psychology - A Handbook of yogic Psychotherapy*. D.K. Print world (P) Ltd.
35. Muni, Swami Rajarshi. (2006). *A Synthesis of Psychology and Metaphysics*. Delhi : Motilal Banarsidass Publications.
36. Morgan, C.T. , R.A. King, N.M. Robinson. (1979). *Introduction to Psychology*. Tata McGraw Hill Publication.
37. Stagner, R. . *Psychology of Personality Fourth edition*. McGraw Hill Publication co.
38. Hall, C.S. , G. , Lindzey , *Theories of Personality*. Third edition. Wiley Eastern Ltd.
39. Page James D. (1947). *Abnormal Psychology First edition*. Hill Book company inc.
40. Anastasi, Anne. (1982). *Psychological Testing*. New York : Mac Milan Publishing Co.
41. Cattell. R.B. (1974). *Personality and Learning Theory*, New York : Springer.
42. Coster, Geraldine. (1935). *Yoga and Western Psychology*. London : Oxford University Press.
43. Sen, Indra. (1960). *Indian Psychology*. Meerut : Kedar Nath Ram Nath.
44. Safaya, R. (1976). *India Psychology*, New Delhi : Munshiram Manoharlal.

45. Sarason, I.G. (1972), **Personality. An Objective Approach**. New York : John Wiley & Sons, Inc.
46. Sen, Indra. (1960). **Indian Psychology. Some Reflections**. Meerut : Kedarnath Ramnath.
47. Warriar, A.G. Krishna (1983). **Shrimad Bhagavad Gita Bhashya of Shankaracharya**, Madras: Rama Krishana Math.
48. Safaya, Ragunath. (1976). **Indian Psychology**, New Delhi : Munshi Ram Manohar Lal Pvt. Ltd.
49. Shoben, E.J, Jr. (1957). **Toward the Concept of Normal Personality**, American Psychologist, 12.
50. Karambelkar, P.V. (1987). **Patanjala Yoga Sutra**. Lonavla : Kaivalyadhama Publication.
51. Karambelkar, P.V. (1985). **Patanjala Yoga Sutra**. Lonavla: Kaivalyadham S.M.Y.M. Samiti.



दृष्टिकोण



DRISHTIKON

India's Leading Multidisciplinary Referred Hindi Language Journal

UGC CARE LISTED

Certificate Of Publication

This is to certify that Mr./Ms. रक्षा सिंह बघेल (एम.फिल शोधार्थी, (योग))
डॉ० उपेन्द्र बाबू खत्री (सहायक प्राध्यापक, (योग), साँची बौद्ध भारतीय ज्ञान अध्ययन विश्वविद्यालय साँची, (मध्यप्रदेश)), in recognition of Publication of the
Paper entitled चित्त वृत्ति निरोध का मनोविज्ञान

Published in Drishtikon Journal

Vol. 13

Issues 2

in मार्च-अप्रैल, 2021

Impact Factor 5.051

ISSN 0975-119X

Editor



चित्त वृत्ति निरोध का मनोविज्ञान

रक्षा सिंह बघेल

एम.फिल शोधार्थी, (योग)

डॉ० उपेन्द्र बाबू खत्री

सहायक प्राध्यापक, (योग), साँची बौद्ध भारतीय ज्ञान अध्ययन विश्वविद्यालय साँची, (मध्यप्रदेश)

सारांश

आज के इस भागदौड़ भरी व्यस्त दिनचर्या में मनुष्य अपने आप को समय नहीं दे पा रहा है। जिससे उसका मन अस्थिर हो गया है तथा इसी अस्थिरता के कारण उसके व्यवहार में भी परिवर्तन आया है। चित्त की इस अस्थिर दशा को नियंत्रित करने के लिए महर्षि पतंजलि के योग सूत्र में विभिन्न उपायों जैसे- अभ्यास-वैराग्य, क्रिया योग, अष्टांग आदि का उल्लेख मिलता है। इन उपायों के पालन से व्यक्ति के व्यवहार में परिवर्तन आता है। चित्त से तात्पर्य चेतना से है, चेतना जो व्यष्टि एवं समष्टि दोनों जगह व्याप्त है। समस्त वृत्तियों का आधार चित्त है एवं समस्त व्यवहारों का आधार वृत्तियाँ हैं। वृत्तियों में परिवर्तन का आधार तीन गुण हैं। महर्षि पतंजलि का पातंजल योगसूत्र अपने आप में मनोविज्ञान की भावना से उल्लेखित है। महर्षि पतंजलि के मनोविज्ञान व आधुनिक मनोविज्ञान में परस्पर विभेदीकरण की प्रक्रिया निहित है। आधुनिक मनोविज्ञान में मनोविज्ञान का तात्पर्य किसी परिघटना के माध्यम से मस्तिष्क में होने वाले परिवर्तन तथा उस परिदृश्य से निकलने वाले अर्थ का मस्तिष्क, मन एवं व्यवहार में परिवर्तन ही मनोविज्ञान है। योगदर्शन तथा मनोविज्ञान दोनों का केन्द्र बिन्दु मन ही है। यद्यपि चित्त में प्रवाहित आवेगों की धारा के स्वरूप को अक्लिष्ट वृत्तियों में परिवर्तित किया जाये, जिससे व्यक्ति के मन एवं व्यवहार में सकारात्मक परिवर्तन हो।

कूट शब्द- चित्त, चित्त, वृत्ति, मन, मनोविज्ञान, अभ्यास-वैराग्य, अष्टांग-योग, क्रिया-योग।

भूमिका

आज के परिवेश में व्यक्ति का चित्त स्थिर अर्थात् समाहित नहीं है। आपाधापी की इस भागदौड़ भरी दौड़ में उसकी शांति कहीं खो सी गई है, जिसके कारण वह अपने अंदर होने वाले शांति की व्यापकता को पहचान नहीं पा रहा है। बल्कि इसके विपरीत वह मानसिक तनाव एवं हताशा के गहरे कुएँ में गिरता जा रहा है तथा यही मानसिक तनाव तथा हताशा विस्फोट के रूप में प्रकट हो रही है।

विस्फोट की अराजकता में कई हिंसा, दंगे एवं कुप्रथायें जैसी रीतियाँ जन्म ले रहीं हैं। जो कि मानसिक धरातल की श्रेणी से ऊपर उठ ही नहीं पा रहे हैं तथा मनुष्य अपने अन्दर की शांति को भोग-विलास में ढूँढ़कर सीमित हो गया है। उसकी भावना भी दूसरों के लिए परार्थ न होकर स्वार्थानुकूल हो गई है। जिसके परिणामतः दैविय सम्पदा से युक्त ईश्वर इन भोग-विलास रूपी संसाधनों से रूष्ट है।

महर्षि पतंजलि चेतना के इस बिखराव को समग्रता का रूप देने के लिए कदाचित् कई उपायों का उल्लेख करते हैं। महर्षि पतंजलि अपने शब्दों की माला में मोती पिरोये हुए हैं, जो चित्त के समग्रता के विकास को आगे बढ़ाते हैं। मनुष्य के चित्त का बिखराव महर्षि पतंजलि के अनुसार मूढ़ एवं क्षिप्त का द्योतक है। जिनमें रज एवं तम रूपी विकारों का समावेश होता है। रज एवं तम में मलीनता के साथ-साथ अन्तराशयों का भी संगम है।

मन के आवेगों को चंचल एवं विकारों का मूल रूप क्लेश भी है। जो मनुष्य के मानसिक असन्तुलन का द्योतक है तथा इन क्लेशों की मूल जननी अविद्या को कहा जाता है, जो कि निम्नानुसार है।

- अविद्या
- अस्मिता
- राग
- द्वेष
- अभिनिवेश

महर्षि पतंजलि के सूत्र अपने आप में ही मनोविज्ञान की भावना से ओत-प्रोत है। योग सूत्र में प्रतिपादित “योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः” अर्थात् चित्त की वृत्तियों का निरोध ही योग है। किन्तु जब महर्षि पतंजलि के प्रतिपादित सूत्रों एवं आधुनिक मनोविज्ञान की तकनीक को समझा जाये तो चित्त अर्थात् मन पर पूर्ण नियंत्रण

ही मनुष्य के मानसिक रूप से स्वस्थ होने का द्योतक है।

चित्त की अवधारणा

चित्त की प्रकृति का आधार त्रिगुण है तथा प्रकृति में व्याप्त त्रिगुण अपने ही स्वरूप वाला मनुष्य में व्याप्त उनकी प्रकृति के अनुसार अपनी ओर आकर्षित करता है।

“चित्त की पांच अवस्थाएँ हैं।”

- क्षिप्त अवस्था
- मूढ़ अवस्था
- विक्षिप्त अवस्था
- एकाग्र अवस्था
- निरुद्ध अवस्था
- क्षिप्त अवस्था- यह अवस्था रजस प्रधान होती है एवं चंचलता से युक्त होती है।
- मूढ़ अवस्था- यह तमस प्रधान होती है तथा इसमें सभी प्रकार की क्रियाशीलता का अभाव होता है।
- विक्षिप्त अवस्था- इसमें सत्व का आधिक्य रहता है, परन्तु विचलन की स्थिति के कारण रजस का भी उद्भव होता है।
- एकाग्र अवस्था- इसमें सत्व का उद्भव होता है। सत्व में एक ही वृत्ति की तारतम्यता बनी रहती है, इसे एकाग्र की सम्प्रज्ञात अवस्था भी कहा जाता है।
- निरुद्ध अवस्था- इसमें मुख्यतः सभी वृत्तियों का निरोध हो जाता है तथा यह अवस्था असम्प्रज्ञात समाधि का द्योतक है।

वृत्ति की अवधारणा

समस्त वृत्तियों का आधार चित्त है एवं समस्त व्यवहारों का आधार वृत्तियाँ हैं। वृत्तियों में परिवर्तन का आधार तीन गुण हैं। गुणों के आधार पर वृत्तियों को तीन श्रेणियों में विभक्त किया है।

- राजसिक वृत्ति
- तामसिक वृत्ति
- सात्विक वृत्ति
- राजसिक वृत्ति- रजस प्रधान व्यक्ति का मन चंचलता से युक्त होता है। इस तरह के व्यक्ति का चित्त अन्तराश्रयों से संबंधित होने के कारण, समाधि की स्थिति में मोक्ष मार्ग में बाधा का काम करती है। मन अनावश्यक ही अशांति व द्वेष, घृणा की भावना से युक्त होता है। इस प्रकार के व्यक्तियों का संग धर्मपूर्ण नहीं होता तथा इसमें निष्कामता रूपी कर्म का अभाव होता है। ये किसी भी कर्म को फल की इच्छा से युक्त होकर आशक्ति पूर्वक करते हैं।
- तामसिक वृत्ति- तामसिक वृत्ति का स्वभाव मूढ़ता एवं जड़ता से है। रजस की तरह तमस से युक्त व्यक्ति का चित्त विक्षेपों से युक्त होता है। जिसके कारण व्यक्ति भारीपन, आलस्य रूपी गुणों का अनुभव करता है, उनमें किसी भी कार्य को करने की प्रवृत्ति नहीं होती है। वे हर काम को बाधा की दृष्टि से देखते हैं तथा इस प्रकार के व्यक्तियों का आचरण अधर्मपूर्वक होता है। वे दूसरों की वस्तुओं का संकलन धर्मपूर्वक नहीं करते। तमोगुण से युक्त व्यक्तियों की जीवनशैली व खान-पान असंयमित होती है। तमोगुण प्रधान व्यक्ति बासी, उच्छिष्ट, दुर्गन्ध युक्त आहार को पसंद करते हैं।
- सात्विक वृत्ति- सात्विक वृत्ति का स्वरूप निर्मल एवं प्रकाशक होता है। इनमें चित्त के विक्षेपों की प्रधानता न के बराबर होती है। सात्विकता से युक्त व्यक्ति का जीवन संयमित तथा अनुशासन से परिपूर्ण होता है। सतोगुणी व्यक्ति विपरीत परिस्थिति में भी सहजता से रहता है। उसमें विचारों की तारतम्यता एक आवृत्ति से युक्त होती है।

वृत्ति की दो स्थितियाँ

- द्रष्टा की अपने स्वरूप में स्थिति

“तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्”²

जब चित्त की सभी वृत्तियों का निरोध पूर्णतया हो जाता है, तब आत्मा अपने स्वरूप में अवस्थित हो जाता है।

- चित्त रूपी वृत्तियों की व्युत्थान दशा

“वृत्ति सारूप्यमितरत्र”³

जब चित्त की वृत्तियों का पूर्णतया निरोध नहीं होता, जिसके परिणामतः विशिष्ट प्रकार की वृत्तियों का उदय होता है। इस दशा को व्युत्थान दशा कहते हैं। इस दशा का अभिप्राय है, कि प्रकृति एवं पुरुष का स्वरूप अलग न होकर एक है।

“वृत्तयः पंचतय्यः क्लिष्टाक्लिष्टाः।”⁴

स्वरूपता के आधार पर वृत्तियाँ दो प्रकार की होती हैं।

- क्लिष्ट वृत्ति
- अक्लिष्ट वृत्ति
- **क्लिष्ट वृत्ति**- जिन वृत्तियों का उद्गम पंचक्लेशों से होता है, वे क्लिष्ट वृत्तियाँ कहलाती हैं।
- **अक्लिष्ट वृत्ति**- ऐसी वृत्ति जो प्रकृति तथा पुरुष के सानिध्य को अलग करती है एवं योग मार्ग में सहायक रूप में होती है, अक्लिष्ट वृत्ति कहलाती है।

वृत्तियों के पाँच भेद

“प्रमाणविपर्ययविकल्पनिद्रास्मृतयः।”⁵

- प्रमाण
- विपर्यय
- विकल्प
- निद्रा
- स्मृति
- **प्रमाण वृत्ति**-

“प्रत्यक्षानुमानागमाः प्रमाणानि।”⁶

प्रमाण वृत्ति के तीन भेद हैं।

- प्रत्यक्ष प्रमाण
- अनुमान प्रमाण
- आगम प्रमाण
- **प्रत्यक्ष प्रमाण**- पंच ज्ञानेन्द्रियों जब बाह्य रूपी विषयों से संयोग करती हैं। तब वह प्रत्यक्ष प्रमाण कहलाती है।
- **अनुमान प्रमाण**- किसी वस्तु या परिघटना का ज्ञान पूर्व अनुमान पर आधारित होता है।
- **आगम प्रमाण**- आप्त ऋषियों द्वारा प्रत्यक्ष प्रमाण के आधार पर कहे गये शब्दों को आगम प्रमाण की श्रेणी में रखा जाता है।
- **विपर्यय वृत्ति**-

“विपर्ययो मिथ्याज्ञानमतद्रूप प्रतिष्ठम्।”⁷

मिथ्या ज्ञान को ही विपर्यय वृत्ति कहा जाता है।

- **विकल्प वृत्ति**-

“शब्दज्ञानानुपाती वस्तुशून्यो विकल्पः।”⁸

कहे हुए शब्दों का वास्तविक अर्थ में प्रयोग न करना ही विकल्प वृत्ति है।

- **निद्रा वृत्ति**-

“अभावप्रत्ययालम्बना वृत्तिनिद्रा।”⁹

ज्ञान का आश्रय बनाने वाली वृत्ति निद्रा वृत्ति कहलाती है।

- **स्मृति वृत्ति**-

“अनुभूतविषयासम्प्रमोषः स्मृतिः।”¹⁰

अनुभव किये हुए विषय को आधार बनाकर, उन विषयों को न भूलना ही स्मृति वृत्ति है।

चित्त दोष निवारण के उपायों को निम्न परिदृष्टियों में अंकित किया है।

1. अभ्यास-वैराग्य

यद्यपि संसार में चित्त रूपी नदी दो धाराओं में प्रशस्त होती है।

- पाप रूप
- पुण्य रूप

वैराग्य द्वारा चित्त का सांसारिक विषयों की ओर प्रवाह बंद किया जाता है, ओर इसमें सतत् अभ्यास की आवश्यकता है। यह उच्च अभ्यास की साधना है, जिससे व्यक्ति के व्यवहार में सकारात्मक रूप से परिवर्तन होता है।

2. क्रिया योग

क्रिया योग से तात्पर्य है, कि जिन व्यक्तियों का चित्त समाहित नहीं है, तथा अष्टांग योग की पालना में कठिनता महसूस करते हैं, उनके लिए यह वरदान रूप में है।

क्रियायोग मुख्यतः तीन भागों में प्रदिपादित है।

- तप
- स्वाध्याय
- ईश्वर प्रणिधान
- तप तप का तात्पर्य द्वन्द्वो को सहन करने से है।

जैसे- सर्दी-गर्मी, सुख-दुःख इत्यादि।

- स्वाध्याय स्व का अध्ययन या मूल्यांकन करना ही स्वाध्याय है।
- ईश्वर प्रणिधान व्यक्ति का ईश्वर के प्रति जो भाव है, उस भाव को ईश्वर के चरणों में अर्पित करना ही ईश्वर प्रणिधान है।

3. अष्टांग योग

अष्टांग योग आठ अंगों में प्रतिपादित है। यम तथा नियम के स्वरूप से बाह्य एवं अंतः आचरण की शुद्धि है। आसन से काय की शुद्धि, प्राणायाम के द्वारा श्वासों में स्थिरता, जिससे मन चंचलरहित होता है। प्रत्याहार द्वारा करण अर्थात् इंद्रियों पर अंकुश, धारणा, ध्यान, समाधि द्वारा व्यक्ति की आत्मा, परमात्मा में प्रतिस्थापित होती है।

उपरोक्त चित्त शुद्धि के तीनों उपायों द्वारा मन तथा व्यवहार में सकारात्मक परिवर्तन होता है।

चित्त वृत्ति निरोध का मनोवैज्ञानिक आधार

- मनुष्य में व्याप्त भाव

“तस्य वाचकः प्रणवः।”¹¹

मनुष्य अपने भावों (सुख एवं दुःख रूपी भाव) को यदि ईश्वर की तरफ मोड़ दें, तो उसके दुःख कम होकर सकारात्मक का रूप ले लेते हैं। तथा ओम रूपी बीज मंत्र का जाप करने से मनुष्य अत्यन्त सुख की अनुभूति करता है, जिसके परिणामतः उसके मन एवं बुद्धि में गजब का परिवर्तन आता है। बुद्धि कुशाग्र हो जाती है, तथा उसके चित्त में परिवर्तन आता है, आधुनिक विज्ञान भी इस प्रकार की अनेक खोजें कर चुका है, जो इस बात को मान्यता प्रदान करती है।

- अधिगम का मनोवैज्ञानिक आधार

“ततः प्रत्यक्चेतनाधिगमोऽप्यन्तरायाभावश्च।”¹²

अधिगम कभी न खत्म होने वाली प्रक्रिया है। मनुष्य अपने आसपास के वातावरण से कुछ न कुछ सीखता रहता है।

मनुष्य वातावरण या आस-पास के लोगों से नकारात्मक एवं सकारात्मक दोनों ही प्रकार की अभिक्रियाएँ सीखता है। यद्यपि नकारात्मक सीखना उसकी असंगतता का परिणाम है, इसलिए व्यक्ति की इन क्लिष्ट रूपी नकारात्मक अभिवृत्तियों को अष्टांग योग द्वारा आसानी सही मार्ग में लाया जा सकता है। बस इसके लिए उसे अपने अन्दर परिवर्तन कि प्रेरणा जगानी होगी। अष्टांग योग में यम एवं नियम से बाह्य एवं अंतः आचरण की शुद्धि के साथ-साथ चारित्रिक शुद्धि भी होती है। आसन से काय की शुद्धि, प्रत्याहार से इंद्रियों पर नियंत्रण तथा धारणा, ध्यान, समाधि, द्वारा मनुष्य की आत्मा परमात्मा में प्रतिस्थापित हो जाती है। जिससे व्यक्ति के मन एवं व्यवहार में सकारात्मक परिणाम देखने को मिलते हैं।

- मनुष्य में व्याप्त चिन्तन का स्वरूप

“वीतरागविषयं वा चित्तम्।”¹³

मनुष्य के सामने जब कोई किसी परिघटना का विकट स्वरूप आता है, तो वह अन्दर से हिल जाता है। इन परिदृष्टियों का जब व्यक्ति चिन्तन करता है, तो कुछ समस्याओं का निदान होता है तथा कुछ का नहीं। ऐसी परिस्थिति में मनुष्य उलझ जाता है। इन परिस्थिति में मनुष्य को स्वयं को जानना अर्थात् स्वयं का अध्ययन तथा मोक्ष शास्त्र प्राप्त कराने वाले शास्त्रों का अध्ययन करना चाहिए, जिससे उसके अंदर व्याप्त नकारात्मकता दूर हो एवं व्यक्ति उस कठिन परिस्थिति में भी सकारात्मक निर्णय लेने में सक्षम होता है।

दूसरा उपाय प्राणायाम है, प्राणायाम प्राण को स्थिर करने के साथ-साथ मन को भी स्थिर करता है। जिसके फलस्वरूप चित्त में सकारात्मक परिवर्तन होने के कारण निर्णय लेने में सहायता मिलती है।

- व्यक्तित्व का स्वरूप

“मैत्रीकरुणामुदितोपेक्षाणां सुखदुःखपुण्यापुण्यविषयाणां भावनातश्चित्तप्रसादनम्।”¹⁴

आज का भावी मनुष्य भोग रूपी संसाधनों से इतना जुड़ चुका है, कि वह इन भौतिक संसाधनों के अभाव में रहने को तैयार नहीं है।

भौतिक संसाधनों के संसर्ग का मुख्य कारण रज एवं तम रूपी विकारों का जन्म लेना है। अतः इन रज एवं तम रूपी विकारों को दूर करने के लिए अभ्यास एवं वैराग्य महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। ईश्वर का चिन्तन, प्रणव जप आदि चित्त की एकाग्रता को बढ़ाते हैं। ये सभी उपाय चित्त के सत्व को उभारने में मदद करते हैं। जिससे व्यक्ति के मन एवं व्यवहार में परिवर्तन आता है।

उपसंहार

योगदर्शन अपने आप में ही पूर्ण मनोविज्ञान है, जो कि मन बुद्धि तथा अहंकार की संकल्पना पर आधारित है। व्यक्ति का चित्त रजस एवं तमस से युक्त होता है, जिसके फलस्वरूप उसके अन्दर विकारों व क्लेशों का उद्गम स्वतः ही हो जाता है। मनुष्य के अन्दर जो भी मानसिक क्रिया का उद्गम होता है, उसका आधार ज्ञान अथवा संस्कार होते हैं। जो कि मन कि प्रकृति को पूर्णतः बदल देते हैं। मनुष्य जो भी क्रिया करता है, वह या तो सकारात्मक की ओर अभिमुख होती है या नकारात्मक की ओर अग्रसर होती है।

अतः इन नकारात्मक पंचक्लेशादि चित्त की वृत्तियों को योगदर्शन में निहित विभिन्न उपायों द्वारा समाधान किया जाता है। मनोविज्ञान में समाहित अनेक पद्धतियाँ जैसे- चिंतन, स्मरण, स्मृति, विस्मरण, अधिगम आदि का मनोवैज्ञानिक संबंध योगदर्शन के मनोविज्ञान से है।

इन दोनों का समन्वयात्मक रूप आधुनिक समय की समस्याओं के समाधान करने के लिए नई पद्धति को जन्म देता दिखाई देता है।

योग दर्शन में समाहित चित्त की वृत्तियों को विभिन्न उपायों द्वारा मन पर नियंत्रण एवं सकारात्मक दिशा के मार्ग की ओर प्रशस्त करना सिखाता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

- गोयंका हरिकृष्ण, महर्षि पतंजलि कृत योगदर्शन (योगसूत्र), गोरखपुर- 273005, गीताप्रेस, 37 वाँ पुनर्मुद्रण वि.सं. 2066
- श्रीवास्तव, सुरेशचन्द्र, पातंजलयोगदर्शनम्, चौखंभा सुभारती प्रकाशन, वाराणसी, प्रथम संस्करण, 2015
- सरस्वती, स्वामी निरंजनानन्द, योग दर्शन, मुंगेर, (बिहार), योग पब्लिकेशन ट्रस्ट, पुनर्मुद्रण 2004
- श्री स्वामी ओमानन्द तीर्थ, पातंजलयोगप्रदीप, गोरखपुर 273005, गीताप्रेस, 32 वाँ पुनर्मुद्रण वि.सं. 2068
- सिंह, अरूण कुमार, आधुनिक असामान्य मनोविज्ञान, दिल्ली, मोतीलाल बनारसीदास, पुनर्मुद्रण, 2016
- पाण्डेय रामप्रसाद, सामान्य मनोविज्ञान, नई दिल्ली, राजकमल प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 2012
- पाठक, आर.पी., भारतीय मनोविज्ञान, नई दिल्ली, राधा पब्लिकेशन्स, पहला संस्करण, 2009
- शर्मा, रामनाथ, शर्मा, रचना, भारतीय मनोविज्ञान, नई दिल्ली, एटलांटिक पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, 2005
- सिंह, कुमार अरूण (2010), मनोविज्ञान के संप्रदाय एवं इतिहास, दिल्ली, मोतीलाल बनारसीदास, 2010

संदर्भ

1. कुमार, हरीश, योग-सिद्धांत संग्रह, गाज़ियाबाद, राधाप्रेस-पातंजल योगसूत्र, समाधिपाद, पे.नं.- 117
2. पातंजल योगसूत्र- 1/3
3. पातंजल योगसूत्र- 1/4
4. पातंजल योगसूत्र- 1/5
5. पातंजल योगसूत्र- 1/6
6. पातंजल योगसूत्र- 1/7
7. पातंजल योगसूत्र- 1/8
8. पातंजल योगसूत्र- 1/9
9. पातंजल योगसूत्र- 1/10
10. पातंजल योगसूत्र- 1/11
11. पातंजल योगसूत्र- 1/27
12. पातंजल योगसूत्र- 1/29
13. पातंजल योगसूत्र- 1/37
14. पातंजल योगसूत्र- 1/33

65

वां राष्ट्रीय अधिवेशन

दिनांक : 17 से 21 अगस्त, 2021



अखिल भारतीय वर्धन-परिषद्

(A member of FISP)



प्रमाण-पत्र / Certificate

◆ केन्द्रीय विषय - सर्वोदयी चिन्तन परम्परा ◆

प्रमाणित किया जाता है कि श्री/सुश्री/श्रीमती/डॉ./प्रो.....

रक्षा सिंह बघेल, मुंबई

..... ने महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा (महाराष्ट्र) के दर्शन एवं संस्कृति विभाग

द्वारा आयोजित पंच दिवसीय राष्ट्रीय अधिवेशन में सहभागिता की तथा ऑनलाइन दार्शनिक विमर्श किया। संग्रेष्ठी /

व्याख्यानमाला / विभागीय पत्र वाचन में प्रस्तुत आपके शोध-पत्र का शीर्षक था चतुर्जालि श्रेष्ठा सूत्र

..... में मानसिक शोध एवं उनके निवारण के उपाय



21.08.21

महामंत्री

अखिल भारतीय वर्धन-परिषद्

[Signature]

आयोजन सचिव

65 वां अधिवेशन